इस उपन्यास क
तीन पात्रो—
सागर, इकबाल और रश्मि
के नाम

एक थी अनीता

अनीता ने जब अपने बच्चे का मुंह देखा, उसे लगा कि किसीने उसे ख्यालों के गहरे पानी से निकालकर किनारे लगा दिया था। उसने सुख का एक लम्बा सांस लिया और फिर उसे ऐसे लगा कि वह एक औरत नहीं थी, एक मछली थी, जो किनारे लगकर तड़पने लग गई थी। अनीता ने फिर ध्यान से अपने बच्चे का मुह देखा। फिर जैसे किसीने अनीता का हाथ पकड़ा, और किनारे पर पड़ी हुई मछली को गहरे पानी में फेंक दिया। अनीता ने सुख का एक लम्बा सांस लिया। पर फिर उसे महसूस हुआ कि वह मछली नहीं थी, एक औरत थी जो पानी में गिरकर गोते खाने लगी थी।

अनीता ने सोचा—न वह जल-जीव थी, न थल-जीव। और उसने हैरान होकर अपनी आंखें बन्द कर ली।

अनीता के पति ने कमरे में आकर अनीता के माथे पर हाथ रखा। अनीता ने चौंककर आंखें खोली और फिर उसे लगा कि अपने पति की आंखों की ओर देखने की उसमें शक्ति नहीं थी, या शायद आवश्यकता नहीं थी। वह फिर आंखें बन्द करने लगी थी कि एक ख्याल उसके पैरों के तलुवों से लांघकर, उसके माथे की नाड़ियों में फैल गया, और उसने अपने ऊपर ली हुई चादर का कोना खींचा और अपने बच्चे का मुह ढक दिया। ऐसे, जैसे कोई अपने सुन्दर अंग को ढक लेता है कि उसको किसीकी नज़र न लगे। ऐसे, जैसे कोई अपने असुन्दर अंग को लपेट लेता है कि उसपर किसीकी दृष्टि न पड़ जाए। सुन्दरता और असुन्दरता का स्वरूप अनीता से समझा न गया और उसने थककर अपनी आंखें बन्द कर लीं।

अनीता के पीड़ा से टूटे हुए अंग कठिनता से अभी नींद के नर्म बिछौने पर अलसाए थे कि उसने देखा—एक स्त्री धीरे से आकर उसके पैंताने खड़ी

अपने ऊपर ओढ़ी हुई चादर से इस बच्चे का मुंह क्यों ढंक दिया था ?

अनीता ने नज़रें झुका लीं। और फिर चांद की चांदनी में बच्चे मुंह की ओर देखते हुए कहने लगी, 'तूने इसकी मुखाकृति देखी है ?'

'देखी क्यों नहीं। यह तो जिस समय से जन्मा है, इसके मुख की ओर देख रही हूं। देख-देखकर मेरा मन नहीं भरता।' उस स्त्री ने कहा और हाथ से बच्चे का सारा मुंह चांद की चांदनी की ओर किया। बच्चा दूध से सन्तुष्ट हो, गहरी नींद सो चुका था।

'तूने इसके नक्श देखे हैं ?' अनीता बच्चे के और समीप हो गई और कहने लगी, 'इसका तीखा नाक···इसका चौड़ा माथा···छोटी-सी गोल ठुड्डी···इसकी बड़ी-बड़ी आंखें···बिलकुल···' अनीता विचार में डूब गई।

'चुप क्यों हो गई हो ? बिलकुल किस जैसा ?' उस स्त्री ने हंसकर अपना होंठ काटा।

'सागर जैसा।' अनीता ने घबराकर कहा।

वह स्त्री खिलखिलाकर हंस पड़ी। अनीता का हाथ पकड़कर कहने लगी, 'तुम्हें पता है कि तुमने आज तक सागर का अंग स्पर्श नहीं किया।'

'यही तो मैं सोचती हूं···'

'क्या दुनिया का कोई भी विज्ञान यह मान सकता है कि शरीर से शरीर के संजोग के बिना एक बच्चा जन्म ले सकता है ?'

'नहीं।'

'विज्ञान के नियमानुसार यह बच्चा केवल तुम्हारे पति का बच्चा है। रामपाल सचदेव का बच्चा।'

'पर इसकी मुखाकृति···'

'इसकी मुखाकृति सागर से मिलती है।'

'तुम स्वयं देख लो।'

'फिर अगर तू यह मानती है तो यह क्यों नहीं मानती कि इस ने इतना तेरी देह से जन्म नहीं लिया, जितना कि हृदय से। इतना तु

बुत में से नहीं, जितना तुम्हारी आत्मा में से।'

'सम्भव है।'

'फिर तुम मुझसे क्यों उलझती हो ? अपनी आत्मा से क्यों लड़ती हो ?'

'नहीं, मैं तुम्हारे साथ नहीं लड़ती और मैं यह भी मानती हूं कि इतना यह मेरा बच्चा नहीं, जितना यह तुम्हारा बच्चा है। पर तुम इसे लेकर कहां जा रही थी ?'

'मुझे और कहां जाना था। सोचा था कि दो पल जाकर सागर को इसका मुंह दिखा लाऊं।'

अनीता ने सोए हुए बच्चे का मुंह चूमा और अनीता के आंसू बच्चे के माथे पर ढुलक पड़े, "यह दुनिया कभी तुम्हें सागर का बेटा नहीं समझेगी··· दुनिया तो क्या, सागर भी कभी तुम्हें अपना बेटा नहीं समझेगा···"

अनीता की जब आंख खुली, वह हिचकियां लेकर रो रही थी। दाई ऊंचे स्वर से घर के लोगों को कह रही थी, "प्रसूत के दिनों में किसी स्त्री को अकेले नहीं छोड़ते। देखो, तो, सोई हुई भी रो रही थी।"

ती है और वह कच्चे, निर्जन राहों पर चल
तों की पगडंडियां आरम्भ हो जाती हैं। सूने
हो जाती है और वह थकी हुई देखती है कि
र के लोग भागे आ रहे हैं। वह नंगे पैर तेज़ी से भागने
ाता लोगों का शोर ऊंचा भी होता जाता और समीप
ाह अपनी पूर्ण शक्ति लगा देती और अन्त में एक पानी
के किनारे पर पहुंच जाती। अपने पीछे से उसे लोगों के खिलखिलाकर हंसने की आवाज़ आती और साथ ही यह बात सुनाई देती, 'दौड़कर आगे कहां जाओगी?'

घबराई हुई अनीता किनारे से पैर उठाती और भरे दरिया की छाती पर रख देती और फिर वह आश्चर्यचकित होकर देखती कि उसका पैर पानी पर इस तरह टिका होता जैसे किसी अत्यन्त नर्म और शीतल बिछौने पर रखा हुआ हो। अनीता अपना दूसरा पैर भी पानी पर रख देती और फिर बड़ी सहजता से चलने लगती। किनारे की भीड़ किनारे पर ही रह जाती। किसीका साहस नहीं होता था कि वह भरे दरिया में चल-र उसका पीछा कर सकता और वह सबकी पकड़ से निकलकर चलती जाती…चलती जाती…

अनीता को याद आया कि जब वह जग जाती थी, अपने पांवों को हाथ लगाकर देखा करती थी। पर उसके पांओं को कहीं दरिया का पानी नहीं लगा होता था, कहीं रास्ते की धूल नहीं लगी होती थी।

पहले-पहल वह इस सपने से बहुत चौंक पड़ती थी और अपने-आपसे एक लम्बी बहस छेड़ देती थी। इस तरह जैसे उसके शरीर में एक नहीं, दो प्राण हों। एक नहीं, दो स्त्रियां हों। एक, जिसका नाम अनीता था जो श्री धर्मप्रकाश आनन्द की सुपुत्री थी, श्री रामपाल सचदेव की पत्नी थी, जिसकी जाति हिंदू थी, देश भारत था और जिसपर कई नियम और कानून लागू होते थे। और दूसरी, जिसका नाम औरत के बिना और कुछ न था, जो धरती की बेटी थी और आकाश का वर ढूंढ़ रही थी। जिसका मज़हब

मुहब्बत था, देश दुनिया थी और जिसपर एक 'तलाश' को छोड़ कोई नियम और कानून लागू नहीं होता था।

फिर धीरे-धीरे वह इस स्वप्न की अभ्यासी हो गई थी। यह स्वप्न उसका नियम बन गया था। प्रातः उठकर स्नान करने का सा नियम, दोपहर को आटा गूंथकर रोटी पकाने का सा नियम और फिर रात को अपने पति की आवाज सुनकर उसकी चारपाई पर जाने का सा नियम।

फिर इस सपने में कुछ और जुड़ गया था। उसको पानी के दूसरे किनारे पर एक बुत का आभास होने लगा था। उसने कभी इस बुत के समीप जाकर नहीं देखा था। इसलिए वह उसे पहचानती न थी। वह केवल लम्बा कद पहचानती थी, और चौड़ी पीठ को पहचानती थी। मुंह की ओर होने से पहले ही अनीता की नींद टूट जाती थी।

और फिर इस सपने में कुछ और जुड़ गया था। वह उस बुत को बोलते हुए सुनने लगी थी। पर ऐसे जैसे कोई सलग्न होकर कुछ पढ़ रहा होता। यह कोई पत्र था या गीत था, कोई वन्दना थी, या नमाज थी, वह कुछ नहीं जानती थी क्योंकि कभी कोई शब्द उसके कानों में नहीं पड़ा था। केवल आवाज, एक गम्भीर गहरी और किसी पर्वत की कोख से निकलते हुए झरने की सी आवाज।

और फिर एक घटना घट गई थी। एक बार वह किसी दावत में गई हुई थी। वहां एक आदमी की पीठ देखते हुए वह कितनी ही देर उसकी पीठ के पीछे खड़ी रही थी। और फिर उस दावत में जब लोगों ने उस आदमी से फरमाइश की तो उसने एक नगमा सुनाया था। सागर उसका नाम था।

अनीता ने अपना होंठ दांतों से काटकर जांचा था कि यह सपना नहीं था, सपने जैसा सच था। वही आवाज थी, एक गहरी, गम्भीर और किसी पर्वत की कोख से निकलते झरने की सी आवाज।......और फिर उसने जो चेहरा देखा, वही उसके सपने में आने लगा था। उसने जो उसका नाम सुना था, वही उसने अपने बुत का नाम रख लिया था।

फिर जब कभी एक अनीता अपने पति के पास बैठी होती तो दूसरी अनीता सागर के पास बैठी होती। यह बात अलग है कि जिस अनीता के पास शरीर का कोई अस्तित्व था, वह सभीको दिखाई दे सकती थी या जिस अनीता के पास शरीर का कोई अस्तित्व नहीं था, वह किसीको दिखाई नहीं दे सकती थी।

पहले-पहल एक अनीता, दूसरी अनीता से उलझ पड़ती थी, लम्बे-लम्बे झगड़े डाल बैठती थी, लम्बी-लम्बी बहस छेड़ बैठती थी और दूसरी अनीता कभी रोकर और कभी हंसकर चुप रह जाती थी। पर दूसरी अनीता का हृदय इतना अबोध था, आंसू इतने द्रवित होते थे, शब्द इतने दारुण होते थे कि प्रथम अनीता को उसपर प्यार आने लगा था। फिर वह अंतरंग सहेलियों की भांति कई बार उसके पास बैठने लग गई थी। एक बार ऐसे ही बैठी हुई थी कि उसने धीरे से पूछा था—

'आखिर यह सागर तुम्हारा क्या लगता है?'

'पता नहीं।'

'कुछ भी तो नहीं लगता।'

'.........शायद कुछ भी नहीं लगता!'

'शायद क्यों?'

'इसलिए कि सब कुछ लगता है।'

'एक बात कहूं?'

'कहो।'

'अधिकार मिलता है रिश्ते से और रिश्ता मिलता है शरीर से।'

'हां।'

'तुम्हारे पास कोई शरीर नहीं। इस शरीर के सिंहासन पर केवल मेरा राज्य है, क्योंकि मैं बड़ी हूं और मेरे जीते जी तू इस सिंहासन पर नहीं बैठ सकती।'

'यह मैं मानती हूं कि मेरे पास कोई शरीर नहीं। वह शरीर जिसके पास पांव होते हैं, पांवों के आगे एक रास्ता होता है, और रास्ते के आगे एक मंज़िल होती है।'

'यही तो मैं कहती हूं कि तुम्हारी कोई मंजिल नहीं।'

'शायद कोई मंजिल नहीं।'

'फिर शायद……तुम हर बात में शायद क्यों कहती हो? तुम्हारी इस शायद से मुझे डर लगता है।'

'तुम्हें क्यों डर लगता है?'

'यही कि……तुम मेरी प्रजा होकर कहीं विद्रोही न हो जाओ।'

'तुम सोचती हो कि मैं तुमसे शरीर का सिंहासन छीन लूंगी? और इस शरीर के सहारे मैं सागर को पा लूंगी।'

'तुम्हारी जिह्वा कितनी खुल गई है।'

'पर……तुम जानती हो कि तुम जब तक मेरी जिह्वा को थोड़े-से शब्द उधार न दोगी, इस मेरी जिह्वा का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि अर्थ शब्दों से निकलते हैं और तुम्हारी भाषा के सारे शब्द तुम्हारे अधिकार में हैं।'

'मैं तुम्हें कभी भी कोई शब्द उधार न दूंगी।'

उस दिन उसने जो बातें आप से शुरू की थीं, खीजकर बन्द कर दी थीं। और फिर वह कई दिन उस दूसरी मनीता से नहीं बोली थी। पर फिर एक दिन उसने उस दूसरी मनीता को अपने घुटनों के पास बिठा लिया और कहा था:

'आखिर तुम गूंगों की तरह मेरे मुंह की ओर टकटकी लगाकर क्या देखती रहती हो?'

'लोग कहते हैं कि गूंगों की बातें मां-बहनें को समझ में आ जाती हैं। मगर और कोई मेरा कुछ नहीं लगता, तुम तो मेरी कुछ लगती हो!'

'तुम क्या चाहती हो?'

'मैं चाहती हूं कि तुम एक दिन सागर को यहां बुला दो?'

'तुम उसे क्या कहना चाहती हो?'

'कुछ नहीं। क्योंकि मैं कुछ कह ही नहीं सकती। यह मैं जानती हूं कि तुम मुझे अपनी भाषा के शब्द कभी नहीं दोगी।'

'फिर तुम उसे देखकर क्या करोगी ?'

'कोई चांद और सूर्य को देखकर क्या करता है ?'

'चांद और सर्य कभी हाथ नहीं आते ।'

'जिनके हाथ होते हैं, वह तो भला इस वात को सोचें। पर मैं क्यों सोचूं ? मेरे तो हाथ ही नहीं ।'

उसने एक वार अपने हाथों की ओर देखा था और फिर उस दूसरी अनीता से कहा था—

'यह भी कभी आशा मत करना कि मैं किसी दिन तुम्हें अपने हाथ दे दूंगी ।'

'तू मुझसे इतना क्यों डरती है ? मैंने कभी तुम्हें कुछ कहा है ?'

अच्छा, मैं एक वार उसे बुला दूंगी। बस एक वार। फिर कभी नहीं।'

'तुम्हारी मरज़ी ।'

फिर उसने एक वार सागर को और उसके दोस्तों को शाम की चाय पर बुला लिया था। सागर आया था, और लोग भी आए थे, और चाय हुए एक रोचक प्रश्न उठा था। प्रश्न था कि किसको कितनी भाषाएं आती हैं !

'जिसको जितनी भाषाएं आती हों, वह एक कागज़ पर आज की मेज़वान का नाम उतनी भाषाओं में लिखकर दिखाए।' सागर के एक दोस्त ने यह सलाह पेश की थी।

किसीने अनीता का नाम दो भाषाओं में लिखा था—उर्दू और अंग्रेजी में। किसीने तीन भाषाओं में लिखा था, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी में। किसीने चार भाषाओं में—हिन्दी, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी में। सभी लोग उत्तरी भारत के रहनेवाले थे, इससे अधिक भाषाएं किसीको नहीं आती थीं। केवल सागर का एक मित्र ऐसा था जिसे फ्रेंच भी आती थी। और वह इस समय तक सबसे अधिक जीता हुआ था। फिर कागज़ जब सागर के सामने रखा गया तो हाथ में ली हुई कलम से खेलते हुए सागर ने कहा

था, 'मुझे तो कोई भी माया नहीं आती।' फिर सागर ने धीरे से कहा था—'किसीके दिल की कोई माया नहीं होती।'

अनीता को याद आया कि सागर की यह बात सुनकर वह कांप-कांप गई थी। फिर जब सागर और उसके दोस्त चले गए तो उसने बड़े रोष से उस दूसरी असहाय अनीता की ओर देखा था—'यह सारा तुम्हारा दोष है। तुमने सुना, सागर ने क्या कहा था?'

'जो कुछ कहा था, उसने कहा था। मैंने तो कुछ नहीं कहा।'

'तू किसी दिन पता नहीं क्या करेगी।'

'मैं क्या करूंगी? मैं कुछ कर ही नहीं सकती।'

'पर मेरी एक बात सुन ले, मैं अब सागर को कभी नहीं बुलाकर दूंगी।'

'तुम्हारी मरजी।'

'मैं सच कह रही हूं, मैं अब उसे कभी नहीं बुलाऊंगी।'

'अब जबकि सागर यहां से चला गया है, और फिर उसे यहां कभी आना नहीं, तुम्हें मुझसे डरना नहीं चाहिए। अपितु तुम्हें चाहिए कि आश्वस्त होकर मुझे कुछ मिनटों के लिए अपने हाथ दे दो।'

'यह किसलिए?'

'यूंही, मैं उनसे थोड़ा खेलूंगी।'

'तुम मुझे सच क्यों नहीं बतातीं।'

'मैं इन हाथों से सागर को स्पर्श करके देखना चाहती हूं।'

'पर सागर चला गया है।'

'कोई बात नहीं। उसके हाथों से स्पर्श की हुई वस्तुएं यहां पड़ी हुई हैं। मैं इन वस्तुओं को पकड़कर देखना चाहती हूं।'

'मेरे विचार से तुम दीवानी हो गई हो।'

'अगर तुम्हारा यही विचार है तो फिर तुम मुझसे डरती क्यों हो? दीवानों से क्या डरना हुआ? कोई डरे तो बुद्धिमानों से डरे।'

उसने अचम्भे में आकर अपने हाथ दूसरी अनीता को दे दिए थे। और उस अनीता ने मेज पर पड़े हुए सागर के जूठे प्याले को दोनों हाथों से उठा

लिया था और फिर उसमें बची हुई ठण्डी चाय का घूंट लेकर अनीता को कहा था, 'अगर मैं दीवानी भी हो गई हूं तो तुम्हारा क्या गया? पर तुम्हें क्या मालूम कि आज मैंने क्या पी लिया है।'

'क्या पी लिया है?' उसने एक निश्वास लेकर पूछा था।

'जिसको पी लेने के बाद आदमी मर नहीं सकता।'

'तू अब मर नहीं सकती?'

'केवल यही नहीं कि मर नहीं सकती, मैं सदा जवान भी इसी भांति रहूंगी!...वर्ष बीत जाएंगे, तुम्हारा यौवन ढल जाएगा, तुम्हारे मुंह पर आयु की सलवटें पड़ जाएंगी, तुम्हारे इन बालों की कालिमा धुल जाएगी; पर मैं इसी तरह रहूंगी—इसी तरह जवान और इसी तरह सुन्दर।'

उसने शीघ्रता से अपने हाथ उस दूसरी अनीता से छीन लिए थे। पर उस अनीता को अब इस अनीता पर कोई रोष नहीं था। उसने इस संसार की किसी ऐसी वस्तु का आस्वादन कर लिया था, जो इस अनीता ने कभी नहीं चखना था।

फिर कितने दिन बीत गए थे। बिलकुल चुपचाप। उसने जैसे दूसरी अनीता का ध्यान ही छोड़ दिया था। वह घर के काम में लगी रहती थी। वह राह जाते व्यस्तता ढूंढ़ निकालती थी। काम उसके गले इतना नहीं पड़ते थे, जितना वह कामों के गले पड़ती थी। और जब उसके अंगों में शक्ति नहीं रहती, वह भयभीत हरिणी की भांति निद्रा की गुफा में घुस जाती थी।

फिर नींद भी उससे मिन्नत करवाने लग गई थी। वह कितनी-कितनी देर नींद को आवाज़ें देती रहती, पर नींद उससे थोड़ी दूर खड़ी होकर मान करती रहती थी। और फिर हठ में आकर अनीता ने नींद की गोलियां खानी शुरू कर दी थीं।

नींद की गोलियां खा-खाकर उसका सिर इतना भारी रहने लग गया था कि कई बार उसे लगता कि इस सिर के भार के नीचे उसकी गर्दन को बल पड़ जाता था। उसकी ऐंठी हुई गर्दन के नीचे उसके कन्धों में दर्द होने

ा था और यह कन्धों की पीड़ा उसकी पीठ की हड्डी में उतरने लगी
।

एक दिन मौसम में बड़ी बेचैनी थी। हवा भटकी हुई चल रही थी। कभी लगता जैसे वह लम्बी-लम्बी हिचकियां ले रही हो। वह निढाल होकर अपनी चारपाई पर लेटी हुई थी। यह समय गहरी सन्ध्या का था। उसका पति अभी क्लब से लौटा नहीं था। बाहर का दरवाज़ा खटका था और उसके नौकर ने अन्दर आकर कहा था, 'कोई साहिब मिलने आए हैं।'

'और तूने कह क्यों नहीं दिया कि साहब अभी क्लब से लौटे नहीं।'

'वह साहिब को नहीं, आपको पूछते हैं।'

'मुझे ?—'

'उन्होंने मुझे अपना नाम बताया था, पर भूल गया।'

'जाओ। फिर नाम पूछ आओ—'

और नौकर ने लौटकर कहा था, 'सागर।' इस शब्द ने उसके सम्पूर्ण सांस को अपने मुट्ठी में ले लिया था। और उसे लगा था जैसे उसने आज नींद की एक गोली के स्थान पर बहुत-सी गोलियां खा ली थीं और अब उसके होश गुम होते जा रहे थे।

उसके होश शायद बस में न आते, पर वह दूसरी अनीता इस अनीता से अधिक चैतन्य थी। वह तत्परता से उठकर दर्पण के सामने हुई थी, उस थोड़ा-सा बालों को सवारा था और फिर बाहर के बड़े कमरे में आ गई थी।

'उस दिन गलती से आपका पैन मेरे साथ चला गया था—' साग कहा था—और हाथ में पकड़ा हुआ पैन उसके आगे कर दिया था।

उसके मन में कितनी ही बातें आई थीं—यह मेरा पैन कितना है जो यह गलती कर सकता है···आपका क्या विचार है सागर कि करना सरल बात होती है?—पैन और स्त्री में बड़ा अन्तर होता है और फिर इस दुनिया में हर कोई गलती कर सकता है, पर इस औरत को गलती करने का भी अधिकार नहीं होता···कई बार

पर उसने इन बातों में से कोई बात नहीं कही थी। केवल इतना कहा था, 'इस पैन का मन आया होगा कोई गीत लिखने को, इसलिए यह आपके साथ ही चला गया। यह बेचारा जहां चाहता है, वहीं रहने दीजिए न।'

और सागर ने अपना पैनवाला हाथ देखते हुए कहा था, 'मैं सचमुच इससे एक नज़्म लिख रहा था। तभी इतने दिन लौटाने नहीं आया—'

'मैंने स्वयं तो जीवन में कभी कुछ नहीं लिखना। यही सोच लिया करूंगी कि संसार का एक गीत जिस स्याही से लिखा गया था, वह स्याही मेरे पैन की थी।'

न जाने यह बात वह कैसे कह गई थी। और फिर यह बात कहकर उसने अपनी जिह्वा काट ली थी।

'फिर एक स्याही की बोतल भी दे छोड़िए। मैं जब भी गीत लिखा करूंगा, उसी स्याही से लिखा करूंगा।' सागर ने कहा था और हाथ की सिगरेट मेज पर पड़ी हुई राखदानी में बुझाकर अनीता के मुंह की ओर इतनी उदास आंखों से देखा था कि अनीता को लगा था—वह एक औरत नहीं थी, एक सिगरेट थी जिसको सागर ने अपनी एक ही नज़र से सुलगा दिया था।

'तो फिर स्याही नहीं मिलेगी? मैं जाऊं?' सागर ने कहा था और बाहर के दरवाज़े की ओर मुड़ गया था।

संसार के सम्पूर्ण शब्द जड़ हो गए थे और उसके होंठों पर ठण्डे कंकरों की तरह जम गए थे। अगर कोई इन ठण्डे कंकरों को जोड़ पाता और उनके फिर से स्निग्ध शब्द बना पाता तो वह अनीता के होंठों पर पढ़ सकता था: 'मैं एक औरत नहीं रहना चाहती, मैं एक स्याही की बोतल बन जाना चाहती हूं।'

सागर चला गया था। वह वहीं खड़ी की खड़ी रह गई थी। उस दिन के बाद वह अनीता नहीं रही थी, एक सुलगती सिगरेट बन गई थी। सागर ने इस सिगरेट को सुलगा दिया था, पर पीने का अधिकार नहीं

लिया था और उस दिन के बाद उसे अनुभव होने लगा था कि उसके जीवन में जो धुआं निकल रहा था, वह सागर की सांसों में नहीं मिल रहा था। धुंही हवा में व्यर्थ जा रहा था।

हां, उस दिन के बाद उसकी इस दूसरी मनीता के साथ जाने कैसी सुलह हो गई थी। दोनों एकजान हो गई थीं। दोनों एक-दूसरे के आंसू पोंछ देती थीं। दोनों एक-दूसरी के कान में अपने दिल की बातें कह दिया करती थीं। केवल इस मनीता ने उस मनीता को कभी अपना हाथ-पांव नहीं दिया था जिनसे चलकर वह सागर के पास जा सकती और इस जीवन के राह में सागर का हाथ थाम सकती। वैसे जब वे अकेली बैठती थीं, एक-दूसरी का सब कुछ बांट लिया करती थीं।⋯बिना किसी प्रकार पूछे। यह घनिष्टता उसी दिन आरम्भ हो गई थी जिस दिन सागर अपने हाथ में पकड़ी हुई सिगरेट कमरे की राखदानी में बुझाकर चला गया था। उसने कमरे के सभी दरवाज़े बन्द कर लिए थे। राखदानी में बुझी हुई सिगरेट के पास इस तरह बैठ गई थी जैसे किसी अमूल्य वस्तु की रखवाली कर रही हो।

मनीता को याद आया कि⋯⋯फिर उसने तीली जलाकर सिगरेट के उस बुझे हुए टुकड़े को सुलगा लिया था। और जब उसने वह सिगरेट अपने होंठों से लगाई थी, उसे लगा था—जैसे इस सिगरेट के धुएं में से उसे सागर के सांसों की महक आई हो।

और इस दिन के बाद वह दिन में एक बार अवश्य अपना कमरा बन्द करके बैठने लगी थी। उसने बहुत-सी सिगरेटों की डिब्बियां मोल लेकर अपनी अलमारी में रखली थीं। वह रोज़ नियमानुसार एक सिगरेट सुलगाती थी और फिर उसके धुएं में सागर के सांसों की कल्पना करती थी। उसके लिए यह नियम उसी तरह बन गया था जैसे किसीके जीवन में पूजा का नियम बन जाता है।

कभी उसको ऐसा भी अनुभव होता था कि उसने जैसे किसीका बहुत-सा कर्ज़ देना था और यह नियम इस तरह ही था जैसे वह किस्तों से

किसीका कर्ज़ चुका रही हो, और फिर उसको अपनी बूढ़ी दादी स्मरण हो आती थी जो सदैव रोटी खाते समय एक ग्रास किसी गाय के लिए रख लेती थी, और अनीता सोचा करती थी कि समय के नये बदल रहे रूप के साथ शायद उसी गऊ-ग्रास का ही रूप बदल गया है।···

वह जब सिगरेट लगाती थी, उसे बलात् अलाउद्दीन के चिराग़ का विचार आ जाता था। धुएं की पतली-सी लकीर में से सागर का बुत उभर आता था और उसको अलाउद्दीन के चिराग़ में से निकलनेवाले 'जिन्न' का ख्याल आ जाता था। उसने जैसे कहानियों में सुना हुआ था कि एक जिन्न जब चिराग़ के धुएं से निकल आता तो वह अलाउद्दीन के आगे हाथ बांधकर खड़ा हो जाता था। और पूछता था : बोल मेरे मालिक, मेरे लिए क्या हुक्म है ?

अनीता को लगता कि सागर भी उस 'जिन्न' की तरह उसके सामने प्रत्यक्ष हो आता था। केवल अन्तर इतना था कि वहां वह जिन्न अलाउद्दीन के आगे हाथ बांधकर खड़ा होता था, और यहां खुद अलाउद्दीन को यानी अनीता को अपने जिन्न के आगे हाथ बांधकर खड़ा होना पड़ता था।

—तुमने मुझे काहे के लिए बुलाया है ?—उसे लगता जैसे सागर उससे पूछ रहा होता।

'मेरी आंखों के सामने दो मिनट ठहर जाओ। बस और मैं कुछ नहीं कहती। मैं तुम्हें बैठने के लिए भी नहीं कहती, क्योंकि यह पराया घर है। जितना यह तुम्हारे लिए पराया है, उतना ही यह मेरे लिए पराया है। इस धरती पर कोई भी तो स्थान मेरा अपना नहीं—उसे लगता कि सागर को वह यह कह रही होती कि······

सिगरेट सुलगकर बुझ जाती और धुएं के साथ ही सागर भी अलोप हो जाता। उसने कभी दूसरी सिगरेट नहीं लगाई थी। अधिक देर के लिए सागर को खड़े रखना उसे गुस्ताखी लगती थी।

और उसे लगता था कि वह अपने जन्म से एक देवदासी थी जो संगमरमर के फर्श पर नाच कर रही थी जिसकी कुछ शिलाएं काले रंग की

थीं और कुछ शिलाएं श्वेत रंग की। उसने क्रमशः एक पांव काली रंग की शिला पर रखना होता था और दूसरा श्वेत रंग की शिला पर। यही उसके नृत्य की कला थी और यही उस मन्दिर के फर्श की बनावट थी।

यह सब कुछ होते हुए उसे कभी नही लगा था कि उसकी चेतना में और अचेतना मे जो अन्तर था, वह दिनों-दिन घट रहा था। वह कला में निपुण नर्तकी की तरह अपने जीवन के यथार्थ के साथ भी खेल रही थी और अपनी कल्पना के साथ भी। पर फिर एक दिन ऐसा हुआ कि उसे लगा जैसे वह एक नुकीले शिखर पर खड़ी हो, जिसके दोनों ओर गहरी खाइयां थीं। अगर वह चेतना की खाई में गिर पड़ी तो भी अपनी कल्पना से बिछुड़कर चकनाचूर हो जाएगी और अगर वह अचेतना की खाई में गिर पड़ी तो भी यथार्थ से टूटकर वह दीवानगी की अंधेरी परतों में गुम हो जाएगी।

यह ऐसे हुआ था कि एक दिन वह और उसका पति रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़े थे। उसके पति का एक मित्र उस शहर से बदली होकर जा रहा था और उसका पति अपने मित्र को और उसके परिवार को विदा करने के लिए आते समय अनीता को भी अपने साथ ले आया था। उसी प्लेट-फार्म पर उसने देखा कि सागर भी खड़ा हुआ था और उसके कुछ दोस्त भी।

सागर ने हाथ में एक सूटकेस पकड़ा हुआ था और अनीता को लगा था कि उसके शरीर की पूरी शक्ति निकलकर उस सूटकेस में चली गई थी। वह अपने चौगिरदे की भीड़ से अलग होकर सूटकेस को इस तरह देखने लग गई थी जैसे सागर से बात करने के लिए थोड़ी-सी शक्ति उस सूटकेस से वापस मांगती हो।

'अनीता!' सागर ने हाथ का सूटकेस नीचे फर्श पर रखकर उसकी ओर देखा था और अनीता ने सोचा था कि वह अपने पांव को लड़खड़ाने से बचाने के लिए नीचे फर्श पर बैठ जाए, उस सूटकेस पर बैठ जाए।

'मैं इस गाड़ी से जा रहा हूं।'

'क्यों?'

'एक नौकरी मिल गई है कलकत्ता।'

फिर उसको कुछ मिनट बिलकुल होश नहीं रहे थे। और जब थोड़ी-सी होश आई थी तो उसने देखा कि वह सचमुच ही सूटकेस पर बैठी हुई थी और उसका सारा शरीर थर-थर-कांप रहा था।

'तुम्हें इसी तरह ही चले जाना था ? मुझे बताकर भी नहीं जाना था—' उसे महसूस हुआ कि उसने यह कहा था पर उसकी आवाज़ जाने किस पाताल से निकली थी, उसे स्वयं भी सुनाई न दी थी।

'मैं रात को आया था आपकी ओर।' उसे सागर की आवाज़ सुनाई दी थी और फिर सागर ने आगे कहा था, 'कमरे की बत्तियां बुझी हुई थीं, मैंने सोचा आप लोग सो गए होंगे। मैं बाहर से ही लौट आया था।'

पौष मास की तीखी सर्दी थी। सागर को ज़ुकाम था। अपने रूमाल का उसने दो-तीन बार प्रयोग किया और फिर वह अपने कोट की दोनों जेबों को टटोलने लगा था, शायद कोई दूसरा साफ रूमाल ढूंढ़ रहा था। अनीता ने सागर के हाथ में पकड़ा हुआ रूमाल अपने हाथ में ले लिया था और अपने कोट की जेब से एक साफ रूमाल निकालकर सागर को दे दिया था। फिर उसको होश नहीं कि किस समय गाड़ी आई थी, किस समय वह सूटकेस से उठकर बेंच पर बैठ गई थी। किस समय गाड़ी चली गई थी और किस समय वह स्टेशन से बाहर निकलकर अपने पति के साथ लौट आई थी।

उस रात जब वह अपने पति के साथ लेटी हुई थी, न जाने वह कौन-सी धरती थी, कौन-सा देश था, कौन-सा शहर था, कौन-सा घर था और उसके अंगों को अपने अंगों से सटाकर उसकी चारपाई पर लेटा हुआ कौन-सा आदमी था। सारी रात वह अचेतना की खाई में गिरी-पड़ी रही थी, एक गुफा में पड़ी रही थी, एक कन्दरा में पड़ी रही थी। दूसरे दिन सवेरे उसको कुछ होश आई थी और उसने देखा था कि उसने दाएं हाथ की मुट्ठी में एक रूमाल पकड़ा हुआ था और शायद सारी रात उसने अपनी मुट्ठी में दबाए रखा था।

यह वही रात थी, अनीता को अच्छी तरह याद आया, यह वही रात थी जब एक बच्चा उसकी कोख में आया था।

तीन

अगले दिन प्रातः जब दाई ने अनीता के शरीर को हाथ लगाया तो उसने देखा कि अनीता को हल्का-सा बुखार हो आया था। फिर चाय का प्याला देते हुए जब दाई ने अनीता के माथे को हाथ लगाया था तो वह डर गई। अनीता का ज्वर बढ़ गया था।

"इन कच्चे दिनों के ज्वर से मुझे डर लगता है," दाई ने अनीता के पति को कहा और डाक्टर को बुलाने की सलाह दी।

डाक्टर आया, उसने अनीता को दवाई दी और जाते हुए कह गया, "जब तक ज्वर न उतरे, बच्चे को मां का दूध मत देना।"

अनीता को ज्वर से डर नहीं लगता था, न मरने से डर लगता था, पर डाक्टर की बात सुनकर एक बात उसके मन में आई, 'मरने से पहले मैं इस बच्चे का अंग-अंग स्पर्श कर देखना चाहती हूं। इसके मांस की खुशबू को सूंघना चाहती हूं, इसके मुंह के सांसों में से मैं घूंटें भरना चाहती हूं और मैं चाहती हूं कि इसके नन्हे-नन्हे होंठ मेरी छाती को चूस लें···'

दाई जब बच्चे के सारे कपड़े समेटकर गुसलखाने में धोने के लिए ले गई, उस समय अनीता की सास रसोई में बैठी हुई थी, अनीता कमरे में अकेली थी। अनीता ने धीरे से करवट बदली और तकिये का सहारा लेकर चारपाई पर बैठ गई। बच्चे का पालना अनीता की चारपाई के पास ही था। अनीता ने कांपते हाथों से सोए हुए बच्चे को पालने से निकाल लिया और अपनी गोद में लेकर उसका मुंह देखने लग गई।—'बिलकुल सागर का मुंह—वही माथा—वही आंखें—वही होंठ—'

अनीता के पूरे शरीर में गुस्से की एक गर्म रेखा दौड़ गई—यह क्रोध अनीता को अपने-आपपर आया था, 'मैं कैसी मां हूं ? मैं

अगर बच्चे को अपनी छाती से लगाकर देखना चाहा है तो इसलिए नहीं कि यह मेरा बच्चा है, इसलिए नहीं कि मैं इसकी मां हूं, केवल इसलिए कि इसके मुंह से मुझे सागर के मुंह का भ्रम होता है, इसकी आंखों में से सागर की आंखों का, इसके होंठों में से सागर के होंठों का…'

और अनीता ने कांपते हाथों से बच्चे को फिर पालने में लिटा दिया। हारकर चारपाई पर लेटकर वह सोचने लगी, 'मेरा कोई इलाज नहीं। इस दुनिया में मेरा कोई इलाज नहीं। अच्छा ही हो, अगर यह मेरा ज्वर कभी न उतरे। मैं इसी ज्वर से मर जाऊं।…'

बूंद-बूंद आंसू अनीता के तकिये पर गिरते रहे और फिर उसका सिर अवसन्न हो गया।

गहरी सन्ध्या हो गई थी जब ज्वर का ज़ोर कम हुआ। दाई ने अनीता को दवा की खुराक दी और फिर उसकी चारपाई पर बैठकर उसके पांवों को दबाने लगी। अनीता ने एक बार पालने की ओर देखा और फिर आंखें बन्द करके अपने-आपको देखने लगी।

अनीता को वे दिन याद आए जब, चाहे वर्षा हो, चाहे अंधेरी चले, वह नियम से अपने कमरे को बन्द करके कुछ समय के लिए उस कमरे में अवश्य बैठा करती थी। एक दिन वह इसी तरह बैठी हुई थी जब उसके कमरे के दरवाज़े पर खटखट हुई। अनीता ने अपने हाथ का सिगरेट राखदानी में रखकर जब दरवाज़ा खोला था तो दरवाज़े के बाहर उसका पति खड़ा था।

'इस समय ? दोपहर को ?' अनीता ने कुछ आश्चर्य से कहा था।

'मैं तुम्हारे कमरे में आ जाऊं ?' पूछने के लिए अनीता के पति ने पूछ लिया था, पर उत्तर की प्रतीक्षा के बिना ही वह दरवाज़े पर रखे हुए अनीता के हाथ को हटाकर कमरे में आ गया था। और फिर कमरे में आकर उसकी हंसी निकल गई थी।

'तुमने मुझे बहुत परेशान किया है। कितने दिन से मैं न अच्छी तरह से खाना खा सका हूं और न दिन-भर काम कर सका हूं।'

'क्यों?'

'मुझे ऐसे लगता था कि मैं जब अपने काम पर चला जाता हू, पीछे रोज कोई आदमी तुम्हे मिलने के लिए आता है।'

अनीता के होंठों पर एक मुस्कान आ गई थी। पर यह मुस्कान एक भयभीत जानवर की तरह थी जो फिर जल्दी ही अनीता के खुले हुए मुह की गुफा में गायब हो गई थी।

'एक दिन मैंने तुम्हारे कमरे की दहलीज पर सिगरेट की राख गिरी हुई देखी थी, और फिर एक दिन तुम्हारे मेज के पाये के पास, और फिर एक दिन तुम्हारे पलग के पाये के पास। कई दिन मै बहुत परेशान रहा। फिर कल मैने तुम्हारे कमरे में सिगरेट का एक टोटा देखा जिसके किनारे पर लिपस्टिक का निशान था। फिर रात को जब तुम सोई हुई थी मैं तुम्हारा हाथ पकडकर तुम्हारी उंगलियो पर सिगरेट का निशान देखता रहा।—मेरा अनुमान ठीक ही निकला।' अनीता के पति ने राखदानी मे सुलगती हुई सिगरेट को देखा था और अनीता के कन्धे पर एक चुटकी भरकर कहा था, 'इसमे भला छिपाने की क्या बात थी? मैंने तो तुम्हे कई बार कहा है कि तुम मेरे साथ क्लब चला करो। तुम भले ही क्लब मे सबके सामने सिगरेट पी लिया करो। यहां कई औरतें सिगरेट पीती हैं। मैं सिगरेट पीना कोई बुरा तो नही समझता।'

और अनीता का पति जब यह कहकर अपने काम पर लौट गया था, अनीता को पहली बार यह ध्यान आया था कि वह बेवफाई कर रही थी।

फिर जैसे चूल्हे के पास बैठे, कई बार चूल्हे मे उडकर एक चिगारी कपड़ों पर आ पड़ती है। 'बेवफाई' का यह शब्द भी छोटी-सी चिंगारी की तरह अनीता के आचल मे आ लगता था। अनीता बैठी-बैठी घबराकर उठ बैठती थी।

'वह अचानक यही तो देखने आया था कि मेरे कमरे में कोई और मर्द तो नही बैठा हुआ'—अनीता सोचने लगती, 'मेरे कमरे में हमेशा रहता है। भले ही वह किसीको नही दीखता। उस समय भी बैठा

किसीको दिखाई नहीं दिया।'

गती थी—'यही बेवफाई है, बेवफाई,' और र उलझ जाती थी। 'बेवफाई' शब्द का एक छोर ा, पर उसे यह पता नहीं लगता था कि वह छोर जाकर जुड़ता था, उसे यह पता नहीं लगता था र रही थी, अपने पति के साथ अथवा सागर के साथ ?…

और अनीता को याद आया कि एक दिन वह प्रातः चाय का प्याला पीते हुए अखबार पढ़ रही थी, जब उस दिन की तारीख पर उसकी दृष्टि पड़ी थी—आठ मार्च। वह सोच में डूब गई थी। उसे लगा था कि इस तारीख से सम्बन्धित कोई बात थी जो उसे याद नहीं आ रही…

उसने चाय का दूसरा प्याला बनाया था और फिर अखबार की खबरों के स्थान पर वह उस दिन की तारीख की ओर देखती रही थी जैसे वह किसीका मुंह पहचान रही हो, पर उसका नाम भूल गई हो। और फिर अचानक उसकी छाती में उसका सांस अटक गया था। उसे उस तारीख से सम्बन्धित बात स्मरण हो आई थी—सागर का जन्मदिन। आठ मार्च—सागर का जन्मदिन !

और उसको सारी बात स्मरण हो आई थी। वह दावत स्मरण हो आई थी जहां उसने सागर को प्रथम बार देखा था। वहां खाने के बाद कॉफी पीते हुए अंक-विद्या की बातें छिड़ गई थीं। बातें लम्बी होती गई थीं और अंकों की गिनती के साथ जुड़नेवाले प्रभावों की बातें करते हुए वहां बैठे लोग एक-दूसरे की जन्म की तारीख पूछने लगे थे। और फिर जब किसीने यह बताया कि सभी नम्बरों में से चार नम्बर और आठ नम्बर सबसे सख्त होते हैं तो सागर ने हंसकर कहा था कि उसकी जन्मदिन की तारीख आठ थी, आठ मार्च।

फिर लगभग नौ का समय था। वह सबको चाय पिलाकर जब खाली

हुई थी, रसोई में जाकर केक बनाने लग गई थी। वह केक नहीं बना रही थी, केक उसके हाथों बन रहा था।

केक को एक प्लेट में रखकर अनीता अपने कमरे में ले आई थी। कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द करके उसने मेज़ के पास दो कुर्सियां रखीं और फिर एक कुर्सी पर बैठकर एक सिगरेट लगा लिया था।

उसने केक में से दो पतले-पतले टुकड़े काटे थे और फिर उनको दो प्लेटों में रखकर कितनी देर बैठी रही थी। उस दिन उसने कितने सिगरेट पिए थे। और धीरे-धीरे दोनों प्लेटों में से केक के दोनों टुकड़े खा लिए थे।

सारे दिन उसे सागर का जन्मदिन मनाने की एक खुमारी रही थी। उसका सिर ऊंचा होकर आकाश को स्पर्श कर रहा था। उसके हाथ आगे बढ़कर तारों को पकड़ रहे थे। उसके होंठ आकाश-गंगा में से घूंट भरते रहे थे, पर रात को उसकी दशा इस तरह हो गई थी जैसे बेहद शराब पीने के बाद किसीसे अपने पावों के बल ठहरा नहीं जाता।

और अनीता को याद आया कि—यह वह रात थी जिस दिन उसने एक डायरी लिखनी आरम्भ की थी। उस रात उसकी छाती में ऐसी घुटन थी कि विवश होकर कुछ अक्षर एक कागज़ पर बरस पड़े थे।

फिर यह डायरी उसकी आवश्यकता बन गई थी। एक दर्पण की सी आवश्यकता जिसमें वह अपने-आपको देख सकती थी। वह अपने-आपको देखना चाहती थी, जानना चाहती थी। वह अपने किसी भी दाग से या ज़ख्म से घबराना नहीं चाहती थी। वह स्वयं को स्वीकारना चाहती थी, उसी तरह, जैसे वह थी।

वह कई महीने तक डायरी लिखती रही थी। इन दिनों उसने पढ़ा भी बहुत था, इसलिए कि वह अपने-आपको पहचान सके। ये पुस्तकें जैसे थर्मामीटर थीं जिनसे वह अपने ज्वर को नापती रहती थी। और अपने रोग का हाल, अपनी आरोग्यता का हाल, वह अपनी [illegible] लिखती रहती थी।

उसने बच्चे की प्रतीक्षा के महीने इसी तरह बिताए थे। फिर जब दाई ने उसके बच्चे के जन्म के लिए, एक अलग कमरा तयार करना आरम्भ किया था, उसके लिए और उसके बच्चे के लिए आवश्यक वस्तुएं एकत्रित करनी शुरू की थीं तो उसको अचानक एक ख्याल आया था, 'अगर मेरी अनुपस्थिति में किसीने चाबियां लेकर मेरी अलमारी खोल ली, तब यह डायरी अवश्य उसके हाथ आ जाएगी,' यह डायरी अनीता को उस कुंआरी लड़की की लगती थी जो अपना नंगेज किसीके हवाले नहीं कर सकती। और उसे एक और भी भय हुआ था, 'अगर बच्चे के जन्म के समय किसी तरह मेरी मृत्यु हो गई तो इस डायरी का क्या होगा?' और अनीता ने निश्चय कर लिया था कि वह इस डायरी को पराये हाथों से बचाने के लिए अपने हाथों जला देगी।

फिर अनीता को याद आया कि—जब वह डायरी को अंगीठी में रखकर तीली जलाने लगी थी तो उसके हाथ विलख उठे थे, 'अगर कभी ., डायरी को सागर एक बार पढ़ लेता—मैं भले ही मर चुकी होती, तब ।। कभी वह बैठता, कभी सोचता तो उसे ध्यान आता—एक थी अनीता···'

और उसका सिर उसके घुटनों पर टिक गया था, 'आज यह डायरी दुनिया से चली जाएगी। कल मैं भी इस दुनिया से चली जाऊंगी। कहानी समाप्त हो जाएगी।···कहानी तो कोई है ही नहीं···केवल एक बात है जो कहानी न बन सकी···केवल यह बात कि एक थी अनीता···और यह बात भी कभी सागर तक नहीं पहुंच पाएगी···'

उसने हड़बड़ाकर अंगीठी में पड़ी हुई डायरी को उठा लिया था, इस तरह जैसे कोई मरणासन्न मुख को एक बार देख लेना चाहता है।

और वह उस डायरी को उठाकर एक बार फिर अपने कमरे में ले आई थी। उसने कमरे के दरवाजे बन्द करके उस डायरी को पढ़ना आरम्भ किया था, इस तरह, जैसे कोई मरणासन्न मुख से कोई अन्तिम बात कर लेना चाहता है। कमरे में बैठकर वह डायरी भी पढ़ती जाती थी और

सिगरेट भी पीती जाती थी। सिगरेट पीते हुए जैसे उसको हमेशा महसूस होता था कि सागर उसके पास खड़ा हुआ है। उस दिन भी ऐसे ही लग रहा था। इस तरह वह एक प्रकार से अपनी डायरी को स्वयं इतना नहीं पढ़ रही थी जितना सागर को पढ़वा रही थी, डायरी में लिखा था :

देर हुई मैंने एक गीत पढ़ा था। शायद
येनजल विलकी का था—
"क्या तुम्हें एक बात का पता है मेरे दोस्त!
मेरे रक्त की बात का?
कि मेरे अन्तर् में रक्त की एक झड़ी लगी हुई है
और अन्तर् में एक हरकत ही हरकत है।
पर मेरे बाहर सब कुछ शुष्क है
और सब कुछ ठहरा हुआ है।"

मुझे अपना जीवन हमेशा इस गीत जैसा लगता रहा है और आगे भी शायद लगता रहेगा।

पर आज का दिन…
आज का दिन मेरे जीवन का एक अलौकिक दिन था।
आज मेरा अन्तर् और बाहर भीगा हुआ था।
आज मेरे अन्तर् की हरकत मेरे, बाह्य अंगों में
आ गई थी। आज मैंने अपने हाथों से तुम्हारे
जन्मदिन का केक बनाया। आज मेरा
इस धरती पर पांव नहीं पड़ता था।
और एक दिन के लिए यह गीत कहीं परदेस चला गया।
पर अब जबकि दिन ढल गया है,
यह गीत परदेस से लौट आया है।
मेरे बाहर फिर सब कुछ सूख गया है
मेरे बाहर फिर सब कुछ ठहर गया है।

[illegible] पर लेटी हुई थी
[illegible] की तरह मेरी चारपाई
के नीचे [illegible] गया।
फिर वह एकाकीपन मेरी चारपाई के पाये को पकड़कर
मेरी देह पर चढ़ गया।
यह मेरे अंग-अंग पर रींगता रहा
और मुझमें इतनी भी शक्ति न थी कि चारपाई
से उठ बैठूं।

और अब भी तुम्हें मैं यह बताने के लिए उठी हूं
कि बेशक मेरे बाहर सब कुछ शुष्क है
सब कुछ ठहरा हुआ—
पर मेरे अन्दर अब भी रक्त की झड़ी लगी हुई है
और मेरे अन्तर् में हरकत ही हरकत है।

और यह मैं तुम्हें इसलिए बता रही हूं
कि तुम मुझे जब भी देखो, पहचान लो।

... ...

आज मैं एलबर्ट कामू का एक उपन्यास पढ़ रही थी जिसमें वह अलजीरियन किनारे पर एक फ्रांसीसी बन्दरगाह का ज़िकर करता है जहां पर कभी पंछियों के परों की सरसराहट नहीं होती, जहां कभी वृक्षों के पत्तों का मर्मर शब्द नहीं होता। और पड़ोसी स्थानों से बिकने आए फूलों से पता लगता है कि आजकल दुनिया में वसन्त ऋतु है।

फिर उस शहर में महामारी फैल जाती है। कुछ लोग शहर से बाहर गए होते हैं, कुछ लोग शहर के अन्दर होते हैं कि सरकारी आज्ञा से उस शहर का दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है। लोगों से कहीं पत्र लिखने की तनिक-सी तसल्ली भी छीन ली जाती है। भले ही लोगों को यह जानने में

कुछ समय लग जाता है कि यह एकाकीपन कितना भयानक है, पर फिर वे जान जाते हैं और फिर स्वयं को इस भयानकता को सौंप देते हैं। अत्यन्त निरर्थक कदमों से चलते हैं नित्य उन्हीं गलियों में घूमते, वहीं के वहीं खिसकते रहते हैं।

कभी-कभी वे करुणा से खेलते हैं और अपनी गोड़ियों की ओर कान लगाकर बैठ जाते हैं कि अभी यहां से किसीके पैरों की आहट आएगी पर फिर वह समय आ जाता है जब उन्हें यह विश्वास करना पड़ जाता है कि अब उनके शहर में दुनिया के किसी हिस्से में से कोई गाड़ी या कोई भौंरा नहीं आती। कोई बेचारा भविष्य की बात सोचता है तो फिर वह शीघ्र ही सोचना छोड़ देता है क्योंकि उसे मालूम हो जाता है कि करुणा के लगाए हुए घावों से जो पीड़ा उठती है, वह पीड़ा किसीसे झेली नहीं जा सकती।

मैंने एलबर्ट कामू की इस बन्दरगाह को कभी नहीं देखा, पर मैं कह सकती हूं कि मैं जब से जन्मी हूं, इसी बन्दरगाह में रह रही हूं। मैंने कभी पंछियों के परों की सरसराहट नहीं सुनी—मैंने कभी वृक्षों के पत्तों का मर्मर नहीं सुना, मुझे ज़रा भी पता नहीं कि दुनिया में आजकल कौन-सी ऋतु है।

इस मेरे शहर का दरवाज़ा समाज की आज्ञा से बन्द हो चुका है और मेरे इस शहर में समाज के बनाए हुए नियमों की महामारी फैली हुई है।

माईकल एंजलो ने जब शिल्पी बनने के लिए पत्थरों को हाथ लगाया था तो उससे अधिक प्रौढ़ एक व्यक्ति ने उसको कहा था, 'प्रत्येक पत्थर का एक अस्तित्व होता है। प्रत्येक पत्थर कुछ बनना चाहता है और वह अपने-आपको प्रसन्नता से उन हाथों को सौंप देता है जिन उंगलियों में छैनी पकड़ी होती है।'—ओ मेरे शिल्पी। मैं अनघड़ पत्थर ही सही, पर तू अपनी कला से मुझमें से कोई ऐसा बुत क्यों नहीं गढ़ लेता जो तुम्हें पसन्द हो।—मैं तुम्हें सच कहती हूं। मैं तुम्हारे हाथों गढ़े जाने के लिए और तराशे जाने के लिए व्याकुल हूं।

मेरी उदासी एक तेसा भी है और एक छेनी भी। लगता है कि मेरी किस्मत अपने हाथों में इस उदासी को पकड़कर दिन-रात मेरा बुत गढ़ती है, कई बार मैं बैठी-बैठी उठकर दर्पण के सामने आ खड़ी होती हूं, सचमुच मेरे नक्श कितने तीखे हो गए हैं कितने तराशे गए और मैं सोचती हूं जब किसी दिन आकर वह मुझे देखेगा तो वह मुझपर एक गीत अवश्य लिखेगा।···पर इस समय जब मैं ये पंक्तियां लिख रही हूं, सोचती हूं कि यह सब कुछ 'नर्सिसिज्म' नहीं ? मैं दूर बैठकर उसके गीतों की सुन्दरी बनना चाहती हूं, उसके नग़मों की अप्सरा, मैं क्यों उसके पास जाकर उसके दुःखों की और उसके सुखों की साथिन नहीं बन सकती ? मैं अपने-आपको एक बुत की तरह एक चौकी पर सजाकर रखना चाहती हूं, मैं क्यों एक साधारण स्त्री की तरह उसकी रसोई में बैठकर उसके जूठे बर्तन नहीं धो सकती ?

और अनीता को याद आया कि उसने अपनी डायरी के मुश्किल से कुछ पृष्ठ पढ़े थे जब उसके अन्तर् में एक पीड़ा उठ खड़ी हुई थी। यह बच्चे के जन्म-पीड़ा की पहली टीस थी, उसने जल्दी से हाथ में पकड़ी हुई सिगरेट बुझा दी थी और डायरी के शेष पृष्ठ उसी तरह छोड़कर डायरी को जलती अंगीठी पर रख दिया था। डायरी की जिल्द उखेड़कर उसने अलग कर ली थी ताकि उसके जलने में अधिक देर न लग जाए। फिर वह कुछ देर लोहे की सलाई से जलते हुए पृष्ठों को अलग कर हवा दिलाती रही ताकि उस परत के कुछ पृष्ठ अधजले न रह जाएं। अंगीठी में इकट्ठी हुई राख को भी उसने धीरे-धीरे गुसलखाने के पानी के साथ बहा दिया था कि राख के निशान किसीके मन में कोई प्रश्न न ले आएं। फिर उसे गहरी पीड़ा होने लगी थी और उसने दाई को बुलाकर अपना शरीर उसके हवाले कर दिया था।

फिर चारपाई को पकड़कर पीड़ा को सहते उसकी आंखें भर आई थीं, 'मेरे टूटते शरीर में से शायद एक सुन्दर बच्चा जन्म लेगा पर उस जलती डायरी के शरीर से केवल एक याद जन्म लेगी, वह भी बड़ी तलख याद··· किसी भी वस्तु को जन्म देना कितना कठिन है···?'

चार

अनीता की चारपाई और उसके बच्चे का पालना एक ही कमरे में थे, पर अनीता का ज्वर एक दीवार बनकर उस चारपाई और उस पालने के बीच में आ खड़ा हुआ था।

दाई ने जब बोतल में दूध डालकर बच्चे को पिलाया तो बच्चे ने थोड़ी देर बाद ही उस दूध को निकाल दिया और फिर भूख से बिलखने लगा। अनीता की छाती में आद्देलित दूध ज्वर से उफन रहा था। बच्चे को पराये दूध से जिद हो गई थी। एक पल वह दूध का घूंट पीता और दूसरे पल बाहर निकाल देता था। और फिर शायद उसने अपनी जिद से ही मां का ज्वर उतार दिया।

पूरे पांच नन्हे-नन्हे हाथ-पैर मारकर उसने अपने पालने और मां की चारपाई के बीच खड़ी हुई ज्वर की दीवार गिरा दी।

अनीता ने जब बच्चे को गोदी में पकड़ा, बच्चा उसकी छाती में से दूध खोजने लगा। अनीता के वक्ष से स्वयमेव दूध उमड़ आया और आंखों में आंसू। मां होने का अहसास अनीता की नाड़ी-नाड़ी में लहर आया।

ये चालीसे के दिन अनीता के जीवन में अजीब दिन थे। सागर का कल्पित मुंह और बच्चे का यथार्थ मुख मिलकर एक हो रहे थे। अनीता के अन्तर् की प्रेमिका और अनीता के अन्तर् की मां मिलकर एक हो रही थीं। अनीता के अन्दर एक सन्तुष्टि पैठ रही थी, जिससे अनीता के अन्तर की एक दरार मिटती जा रही थी।

इस तरह चालीस दिन के बाद अनीता को लगा कि अब वह हंसकर अपने जीवन को उस तरह ही स्वीकार कर सकेगी, जिस तरह वह उसके हिस्से में आया था। और वह सोचने लगी कि अब वह अपने पति

...ता था कि अनीता को अपने दफ्तर के सामने पहुंचकर बस में से उतरना भूल जाता था। बस में बैठी-बैठी ही आंखें जाने ख्यालों की किन परतों में खो जाती थीं कि वे जाते समय दफ्तर की सड़क और आते समय घरवाली सड़क नहीं पहचान सकती थीं। इसीलिए कई बार अनीता बस में बैठा नहीं करती थी अपितु सचेत होकर खड़ी रहती थी और एक-एक सड़क को देखती-पहचानती उतरने के स्थान को ध्यान में करती रहती थी।

कई बार अनीता ने देखा कि राह चलते-चलते अचानक ही उसकी दृष्टि सामने सड़क को देखने लग जाती थी। जहां तब सड़क दिखाई देती वह ध्यान से देखती रहती और फिर उदास होकर अपने ही पैरों की ओर झुक जाती। कभी-कभी बस में चढ़ते हुए भी ऐसा होता। वह एक-एक सवारी के मुंह को ओर देखती और फिर अपना मुंह फेर लेती। अनीता को अपनी दशा पर रोना आ जाता। कई बार वह बैठी-बैठी बोल उठती, 'मेरे पास आओ अनीता! तुम बाहर क्या खोज रही हो? दीवानी हो जाओगी इस तरह खोज-खोजकर। उसने तो कभी तुम्हारी बात भी न पूछी लौट-कर'''तूने सारी आयु ही उसके लेखे लगा छोड़ी'''

पांच

जिन सड़कों को मनीषा नित्य निरखती थी और नित्य अपने-आपको निरखने से रोकती थी, एक दिन उन्हीं सड़कों पर मनीषा को सागर मिल गया।

मनीषा ने बहुत सोचा कि यह इस धरती की बात नहीं थी, पर फिर जब उसने सागर के साथ जाकर अपने दफ्तर में छुट्टी की अर्जी दी तो उसे कुछ-कुछ विश्वास हुआ कि उसके पांवों के नीचे वही धरती थी। ठोस। और धरती पर उसकी दायीं ओर चलनेवाला व्यक्ति सागर था।

चल-चलकर कहीं पहुंचना नहीं था, इसलिए पांवों के नीचे का रास्ता ही साध्य बन गया। मनीषा ने अधिक से अधिक कुछ चाहा तो केवल यह चाहा कि न कभी ये रास्ते खत्म हों और न कभी पांव बिछुड़ें।

"मुझे तो सब कुछ सपना लगता है।" सागर ने चलते हुए कहा, "मुझे कभी विश्वास नहीं आता था कि मैं इन रास्तों पर तुम्हारे साथ मिलकर चल सकता हूं।"

मनीषा बोली नहीं। केवल अपने कानों को टटोलती रही कि क्या वे सचमुच सागर की आवाज सुन रहे थे?

"कब आए थे?" कुछ देर बाद मनीषा ने कहा।

"कल आया था।"

"अगर आज राह में न मिल जाते तो मुझे पता ही नहीं लगता।"

"मैं इस समय, जानती हो, कहां से आ रहा हूं?"

"कहां से?"

"तुम्हारे घर होकर।"

"सच।"

"घर जाकर नौकर से पूछ लेना।"

अनीता से पलकें न झपकी गईं। वह सागर के हाथ में पकड़े हुए सिगरेट को देखती रही। एक बार अनीता के दिल में आया कि वह सागर को यह बात बता दे कि किस तरह उसने सागर के जूठे सिगरेट को सुलगाकर सिगरेट पीना शुरू कर दिया था। पर फिर वह स्वयं ही अपनी बात से शरमा गई।

"तुम थक गई होगी ?" सागर ने पूछा।

"मैं......" अनीता ऐसे हंस पड़ी जैसे उसके पांवों के साथ थकावट का शब्द जोड़ा भी नहीं जा सकता।

"कहीं बैठकर चाय पी लें ?"

"अगर दिल चाहता है तो..."

"मैं यहां किसीके घर नहीं ठहरा हुआ हूं, होटल में ठहरा हुआ हूं, वहां चले चलें ?"

"वहां सही।"

सागर ने हाथ के संकेत से कुछ दूरी पर जा रही टैक्सी को ठहराया।

"विवाह कर लिया होगा ?" अचानक होटल के कमरे में दाखिल होते हुए अनीता ने कहा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

सागर ने अनीता के बैठने के लिए एक कुर्सी आगे कर दी और स्वयं कमरे में टहलने लगा और फिर अनीता की कुर्सी के पीछे खड़ा होकर कहने लगा, "जिसके साथ विवाह करना था, उसने मुझसे पहले ही किसीसे विवाह कर लिया, फिर मैं किससे विवाह करूं ?"

अनीता को लगा कि उसके पांवों के नीचे धरती हिल रही थी। उसने कुर्सी के दोनों बाजू इस प्रकार पकड़ लिए जैसे वह अपने-आपको गिरने से बचा रही हो। और फिर अनीता को लगा कि सागर ने उसकी पीठ पर अपनी बांहों का सहारा देकर गिरने से बचा लिया था।

"घर जाकर नौकर से पूछ लेना।"

अनीता से पलकें न झपकी गईं। वह सागर के हाथ में पकड़े हुए सिगरेट को देखती रही। एक बार अनीता के दिल में आया कि वह साग को यह बात बता दे कि किस तरह उसने सागर के जूठे सिगरेट को सुलगा कर सिगरेट पीना शुरू कर दिया था। पर फिर वह स्वयं ही अपनी बा से शरमा गई।

"तुम थक गई होगी ?" सागर ने पूछा।

"मैं......" अनीता ऐसे हंस पड़ी जैसे उसके पांवों के साथ थकाव का शब्द जोड़ा भी नहीं जा सकता।

"कहीं बैठकर चाय पी लें ?"

"अगर दिल चाहता है तो..."

"मैं यहां किसीके घर नहीं ठहरा हुआ हूं, होटल में ठहरा हुआ हूं, व चले चलें ?"

"वहां सही।"

सागर ने हाथ के संकेत से कुछ दूरी पर जा रही टैक्सी को ठहराय

"विवाह कर लिया होगा ?" अचानक होटल के कमरे में दाखिल हु हुए अनीता ने कहा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

अनीता ने संभलकर ऊपर की ओर देखा। कुर्सी की पीठ की ओर खड़े हुए सागर का मुंह ऊपर झुका हुआ था और सागर का सांस अनीता की गर्दन को छूकर गुज़र रहा था।

अनीता ने कुछ बोलने की कोशिश की। पर फिर उससे बोला न गया। अनीता के होठों पर सागर के होंठ झुके हुए थे। बादलों की परतों से बिजली की लकीरों को गुज़रते अनीता ने केवल दूर से ही देखा था। इस समय उसने महसूस किया कि बिजली की लकीरें उसके अंगों में से होकर गुज़र रही थीं।

"यह तुमने मेरे साथ क्या किया ?" कुछ समय के बाद अनीता के मुख से निकला। अभी भी उसके होंठ कांप रहे थे, उसकी आवाज़ कांप रही थी।

सागर ने अनीता का हाथ पकड़ा और कुर्सी से उठाकर पलंग पर लिटा दिया। अनीता से सचमुच ही कुर्सी पर बैठा नहीं जा रहा था।

"बत्ती बुझा दूं ?" सागर ने पूछा। भले ही यह दिन का समय था, पर कमरे की खिड़कियां बन्द होने के कारण और उनके आगे मोटे पर्दे भी लटके होने के कारण कमरे में गहरा अंधेरा था। सागर ने कमरे में बिजली की बत्ती जलाई हुई थी।

"क्यों ?" अनीता ने पूछा।

"आज मैं तुम्हारे साथ बातें करूंगा। मुझसे रोशनी में बातें नहीं होतीं।" सागर ने कहा और बत्ती बुझाकर पलंग के एक कोने पर बैठ गया।

"तुमने मुझसे कभी भी तो बातें नहीं कीं। मैं इतने वर्ष आप ही अपने से बातें करती रही हूं।" अनीता ने धीरे से कहा।

"मैं तुमसे नित्य बातें किया करता था। मैं नित्य रात को यह सोचा करता था कि तुम मेरी बायीं ओर सोई हुई हो।" सागर ने कहा और अनीता पर ओढ़े हुए कम्बल का एक किनारा अपने घुटनों पर करते हुए कहा, "इस तरह···"

"पर सागर तुमने मुझे कभी भी कुछ न कहा। इतने वर्ष कुछ न

बताया।"

"मैं सोचा करता था कि तुम्हारा विवाह हो चुका है। मैं एक बसे हुए घर को उजाड़ना नहीं चाहता था।"

"पर सागर······"

"क्या कहने लगी थीं······"

"जब कोई किसीकी कल्पना में आ जाए, पर जीवन में न आए तो तुम्हारा क्या ख्याल है कि वह घर, एक बसता हुआ घर रह जाता है?"

"नहीं।"

"आंखें बन्द कर जब कोई औरत किसी और के मुंह को स्मरण करती है, पर आंखें खोलकर किसी दूसरे का मुंह देखती है तो इससे बड़ा झूठ और क्या हो सकता है?"

"मैंने यह कभी भी नहीं सोचा था कि तुम मुझे कभी प्यार कर सकती हो?"

"क्यों?"

सागर कितनी देर चुप रहा। अनीता उसके मुंह की ओर देखती रही। पर अंधेरे में अनीता को सागर के मुंह का कोई रंग दिखाई न दिया।

"वास्तव में···" सागर ने कुछ झिझककर और लजाकर कहा, "मैं सुंदर नहीं, और तुम बहुत सुन्दर हो······इसलिए आज भी मैं बत्ती बुझाकर तुमसे बातें कर रहा हूं।"

अनीता ने अपना सिर सागर की बांह से सटा दिया और अनीता का सारा सौन्दर्य रो उठा, "सौन्दर्य की सज़ा इतनी बड़ी होती है?"

"मैं जितना भी एक-दो बार तुम्हें मिला, मुझे हमेशा ही उस दिन घर जाकर बुखार हो जाया करता था।"

"क्यों?"

"अन्तर् से बहुत कुछ उठता था तुम्हें कहने के लिए, पर मैं अपने से वचन लिया हुआ था कि तुम्हें कभी कुछ नहीं कहूंगा।"

"तुमने इसीलिए मेरा शहर छोड़ दिया?"

सागर ने एक हाथ सिरहाने के ऊपर रखकर, दूसरे हाथ से अनीता की कमीज़ का बटन खोला और कहा, "पर आज मेरा सबर चुक गया है।"

"नहीं, सागर नहीं···" अनीता के मुंह से निकला और उसने सागर का हाथ पकड़कर उसे रोक दिया।

"क्यों ?···" सागर की आवाज़ अटक गई।

अनीता ने कोई उत्तर नहीं दिया। कोई उत्तर उसके अन्तर् से उठा ही नहीं। उसकी विचार-शक्ति स्तब्ध थी, जमती जा रही थी, जड़ होती जा रही थी।

सागर धीरे से पलंग से उठा और कमरे की एक खिड़की को खोलकर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। शायद उसके तप्त श्वासों को तीखी और शीतल वायु की आवश्यकता थी। कुछ देर वह खुली हुई खिड़की में लम्बे-लम्बे सांस भरता रहा और फिर वहीं खड़े, कहने लगा, "चलो अनीता, तुम्हें घर छोड़ आऊं।"

सागर की आवाज़ एक आज्ञा की तरह थी। अनीता ने आज्ञा मान ली और उठकर अपनी चप्पलें पहन लीं। सागर ने चुपचाप कमरे का दरवाज़ा खोला और अनीता को साथ लेकर बाहर आ गया।

बाहर आकर टैक्सी में बैठते हुए अनीता को लगा कि उसका शरीर सीट के कोने में इस तरह धंसता जा रहा था कि जैसे उसके नीचे धरती का कोई सहारा न हो। वह किसी खाई में उतरती जा रही थी। किसीने उसे पहाड़ से नीचे ढकेल दिया था। किसीने नहीं, उसके अपने ही हाथों ने।

अनीता ने घबराकर सागर के मुंह की ओर देखा। सागर का रंग बिलकुल सफेद पड़ा हुआ था। अनीता की आंखें चकरा गईं।

"साग···" अनीता की आवाज़ 'र' के पास आकर टूट गई।

सागर ने न कोई जवाब दिया और न अनीता की ओर देखा। चुप। अनीता को जब टैक्सी का दरवाज़ा खुलने का स्व[illegible] उसे मालूम हुआ कि वह अपने घर के दरवाज़े के साम[illegible]

अनीता टैक्सी से उतरी और मकान के दरवाज़े की [illegible]

कि सागर उसके साथ नहीं आ रहा। वह फिर से टैक्सी में बैठ गया था और टैक्सी का ड्राइवर टैक्सी को पीछे की ओर मोड़ रहा था।

अनीता ने हाथ ऊंचा उठाकर सागर को ठहरने के लिए कहा, पर सागर ने शायद समझा नहीं या शायद समझकर भी ठहरना नहीं चाहा। उसने टैक्सी की खिड़की में से हाथ हिलाया और अनीता की ओर केवल एक बार देखा। फिर वह सीधा सड़क की ओर देखने लगा। अनीता ठहरी की ठहरी रह गई। टैक्सी मिनटों में ही सामने की सड़क पर से भी गुज़र गई, और अब सामने की सड़क नितान्त सूनी थी।

अनीता ने दरवाज़े की चौखट की ओर देखा। उसका एक हाथ चौखट को इस तरह जा लगा जैसेकि चौखट को झकझोरकर पूछना चाहती हो 'यह क्या हुआ?—मिनटों में ही क्या का क्या हो गया?'

अनीता जब कमरे में आकर चारपाई पर गिर पड़ी तो उसे कुछ होश आई, 'यह मैंने क्या कर दिया···जिन हाथों की मैं आयु-भर प्रतीक्षा करती रही, उन हाथों को मैंने खाली लौटा दिया···अब क्या करूंगी मैं इस शरीर को···इस शरीर को पवित्र रखकर मैंने क्या संवार लिया—क्या पवित्रता यही होती है?' अनीता पागलों की तरह अपने हाथों को और अपनी बांहों को देखने लगी। और अनीता को अपने शरीर में से मुर्दा शरीर की गन्ध आई।

अनीता ने घबराकर छत की ओर देखा। छत में लगे हुए 'कुण्डे' की ओर देखा। अपनी कल्पना में उस कुण्डे के साथ उसने एक रस्सी बांधी और फिर उस रस्सी का सिरा अपने गले में डाल लिया, 'यह शरीर अब समाप्त ही हो जाता तो अच्छा है—यह शरीर उसको अर्पित न हुआ जिसके लिए बना था, अब मुझे इसका क्या करना है?'

अनीता ने उठने का प्रयत्न किया। पर उससे उठा न गया। उसका साहस बूंद-बूंद खून की तरह उसके शरीर से बह रहा था। अब उसके अंग हिलाए भी नहीं हिलते थे।

फिर शायद वह कुछ देर सो गई। सोई हुई हड़बड़ाकर उठी, 'मुझे

माफ कर दो सागर…एक बार माफ कर दो…मुझे एक बार आकर स्वीकार लो…'

अनीता के कमरे के दरवाज़े पर खटखट हुई। अनीता को ऐसे लगा जैसे सागर लौट आया हो। अनीता दौड़कर दरवाज़े की ओर गई। दरवाज़े पर उसका बेटा खड़ा था रश्मि। स्कूल से आया था।

अनीता कुछ देर बच्चे के मुह की ओर देखती रही। इस तरह जैसे उसे बच्चे की पहचान भूल गई हो।

"मम्मी…" बच्चे ने कई बार दुहराया।

फिर बच्चे के मुह की ओर देखते-देखते अनीता ने बच्चे को अपनी बाहों में कस लिया। उसके मन में आया, 'मैं अब इसे लेकर उसके पास जाऊंगी…देख…देख…तुम्हारी अपनी सूरत…तुम्हारी अपनी सूरत… तुम मुझसे कैसे रूठ सकते हो?'

अनीता बच्चे के कन्धों को चूमने लगी, बच्चे के घुटने को चूमने लगी और फिर उसके कपड़े बदलने के लिए गुसलखाने में ले गई।

अनीता जब बच्चे के कपड़े बदला चुकी, अपने कपड़े बदल चुकी तो उसके पैर निश्चेष्ट होकर फर्श के साथ चिपक गए, 'उसे भला यह बात मैं किस तरह बताऊंगी…वह किस तरह मेरी बात मानेगा…वह किस तरह मानेगा कि मेरे बच्चे की शक्ल उससे मिलती है…आज से पहले तो मैंने कभी उसका हाथ भी नहीं छुआ था…और आज भी कौन-सा छुआ है… मैंने क्या किया…'

"चलो मम्मी…" बच्चे ने अनीता का हाथ पकड़ लिया और उसे खींचकर बाहर के दरवाज़े की ओर ले जाने लगा। अनीता दरवाज़े तक आ गई। फिर नौकर को आवाज़ देकर कहने लगी, "रश्मि को सामने बगीचे में ले जाओ…"

स्वयं अनीता ने टैक्सी मंगवाई और सागर को खोजने के लिए सागर के होटल की ओर चली तो उसे ख्याल आया कि उसे होटल का नाम नहीं याद आ रहा। टैक्सी का ड्राइवर कितनी ही देर अनीता की ओर प्रश्नसूचक

आंखों से देखता रहा। पर अनीता की स्मरण-शक्ति शिथिल हो चुकी थी आखिर अनीता ने टैक्सीवाले को एक रुपया दे दिया और कहा कि उसे टैक्सी नहीं चाहिए।

अनीता धीरे-धीरे चलती हुई सामने बाजार में चली गई और एक डाक्टर की दुकान में जाकर टेलीफोन की डायरेक्टरी को उलटने लगी। होटलों के नाम पढ़ते-पढ़ते उसने जब एक नाम 'क्लैरिज' पढ़ा तो उसकी आंखें वहीं अटक गई। अनीता ने कांपते हाथों से टेलीफोन का नम्बर मिलाया। "कौन सागर ? मिस्टर सागर ? वे कुछ देर हुई, इस होटल से अपना सामान लेकर चले गए हैं।" अनीता को होटलवालों ने बताया और टेलीफोन का रिसीवर रखते-रखते अनीता की आंखों के सामने अंधेरा छा गया।

छः

आगे के कुछ दिन अनीता को स्मरण नहीं कि उसने किस तरह व्यतीत किए। तेज बुखार में सिरसाम के रोगी की तरह वह बोलती रहती थी। केवल इतना अन्तर था कि सिरसाम का रोगी ऊंचे बोलता है, पर अनीता धीरे बोलती थी, अन्दर ही अन्दर, बिना आवाज के।

'मेरे इनकार का उसने इतना गुस्सा कर लिया'''आखिर वह यह भी तो सोचता कि औरत के इनकार में उसके संस्कार भी होते हैं'''उसने मेरे साथ ज़बरदस्ती क्यों न कर ली'''उसका हक बनता था'''आखिर मैं उसकी वस्तु थी'''उसकी अमानत'''उसके मुंह का रंग कितना सफेद हो गया था'''यह सब मेरा कसूर है। मैंने उसके स्वाभिमान को कितनी चोट पहुंचा दी।'''उसने कोई जल्दी तो नहीं की थी'''सालों के साल उसने सब्र किया था'''वह मुझसे रूठ गया है'''वह मुझे कभी माफ न करेगा'''वह सारी जिन्दगी मुझे सजा देगा'''

'अगर मैं उसे एक पत्र लिख पाती।' अनीता स्वयं में जब संभल न पाती तो सोचती। पर अनीता को सागर का पता मालूम न था।

कुछ महीनों के पश्चात् अनीता ने सागर के एक दोस्त से उसका पता ले लिया। अनीता ने एक साधारण-सा पत्र लिखा। केवल इतना पूछा कि अगर यह पता ठीक हो तो वह सागर को एक लम्बा पत्र लिखेगी। पत्र के पहुंचने की कोई सूचना न मिली। जाने सागर ने जान-बूझकर उत्तर नहीं दिया था या अनीता का पत्र उसे मिला ही नहीं था।

धीरे-धीरे अनीता को नित्य बुखार रहने लगा और धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगा कि उसके जीवन की नौका समुद्र के अथाह जल में घूमती-घूमती अपनी दिशा खो बैठी है। अब कोई भी किनारा उसकी पहुंच

में नहीं आ सकता। और अनीता के अन्दर अपनी पराजय को स्वीकार लेने का एक अजीब-सा साहस हुआ, 'और कुछ नहीं तो कम से कम मैं सच तो बोल सकती हूं, मुझे अपने पति के साथ सच बोलना चाहिए··· मुझे अपने-आपसे सच बोलना चाहिए।···अगर मेरे भाग्य में कोई किनारा नहीं तो मुझे स्वयं को इस समुन्दर को सौंप देना चाहिए···इस नेक आदमी के घर में मुझे नहीं रहना चाहिए···अगर मेरा मन इस घर को किनारा नहीं समझता तो फिर मुझे इस घर से शरीर की सुरक्षा भी नहीं लेनी चाहिए···'

और एक रात अनीता यह साहस अपने होंठों तक ले आई।

"मैं यहां नहीं रहना चाहती······"

"फिर ?" अनीता के पति ने अपने सामने पड़े हुए अपने काम के कागज़ों से ध्यान हटाए बिना ही पूछा।

"मेरा मतलब है इस घर में।"

रामपाल ने एक बार उड़ती नज़र से अनीता के मुंह की ओर दे जैसे वह सोच रहा हो कि इस घर में हवा भी अच्छी आती थी, उजा भी अच्छा आता था, फिर इस घर में क्या कमी थी।

"मैं अलग रहना चाहती हूं।"

रामपाल ने कुछ आश्चर्य से अनीता के मुंह की ओर देखा और उसके माथे को हाथ लगाकर देखा कि उसको रोज़ की तरह आज थ ही बुखार था या कहीं एकबारगी एक सौ छः डिग्री हो गया था।

"मेरी जिन्दगी तो जो कुछ है सो है, पर मैं आपकी ज़िन्दगी व नहीं करना चाहती ?"

रामपाल ने अब भी यह सोचा कि अनीता शायद अपने नि बुखार में निराश हो गई थी और वह सोचने लग गई थी कि उसका शायद 'छूत' का बुखार था।

"मैं सदा आपका आदर करती रही हूं, अब भी करती हूं, पर हूं कि केवल किसीका आदर करना काफी नहीं होता।"

"बस इतना कि यहां मुझे अपना-आप निर्जीव-सा लगता है।"

"तुम कहां जाना चाहती हो?"

"मालूम नहीं," और फिर अनीता ने स्वयं ही अपनी बात पर मुस्कर कर कहा, "यहां मुझे इस तरह लगता है कि मैं जीये बिना ही मर जाऊंगी। मुझे मरने से डर नहीं लगता, पर मैं मरने से पहले कुछ दिन जीकर देखना चाहती हूं। भले ही वे दिन थोड़े से हों।"

रामपाल कुछ देर सोचता रहा और फिर कहने लगा, "क्या तुम्हें यह विचार तब से नहीं आया, जब से तुम स्वयं कमाने लगी हो?"

"नहीं! अपितु नौकरी तो मैंने इसलिए करनी शुरू की थी कि मैं किसी तरह व्यस्त रहूं और मुझे यह ख्याल भूल जाए।···मैं शुरू से घर का अधिक काम भी इसीलिए करती रही हूं···मैं बच्चे के सभी काम भी इसीलिए अपने हाथों करती रही हूं···पर यह सब कुछ···!" अनीता ने थककर एक जम्हाई ली और कहने लगी, "इससे कुछ नहीं बनता।"

"हूं···" रामपाल कुछ पूछने लगा, पर उसे लगा कि उसकी ज़बान बहुत कस गई है। वह कुछ देर चुप रहा। फिर जैसे ज़बान पर बड़ा ज़ोर डालकर कहने लगा, "मेरा मतलब है···" रामपाल की ज़बान फिर रुक गई।

"कि मेरे जीवन में कोई मनुष्य है अथवा नहीं?" अनीता ने स्वयं ही कह दिया।

रामपाल ने कुछ न कहा। केवल उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

"है भी और नहीं भी।"

रामपाल को जीवन के किसी प्रश्न से अथवा उत्तर से डर नहीं लगा था क्योंकि वह सीधी तरह प्रश्न किया करता था और सरलता से प्रश्न को हल करता था। पर इस समय रामपाल को लगा कि जीवन केवल 'जोड़' और 'बाकी' का प्रश्न नहीं था, 'गुणा' और 'भाग' का प्रश्न नहीं था, जीवन एक पहेली थी जिसे हल करने से उसे इस समय डर लग रहा था।

"यह मैंने इसलिए कहा है कि वह आदमी मेरे जीवन में इतना नहीं,

"बस इतना कि यहां मुझे अपना-आप निर्जीव-सा लगता है।"

"तुम कहां जाना चाहती हो?"

"मालूम नहीं," और फिर अनीता ने स्वयं ही अपनी बात पर मुस्करा-कर कहा, "यहां मुझे इस तरह लगता है कि मैं जीये बिना ही मर जाऊंगी। मुझे मरने से डर नहीं लगता, पर मैं मरने से पहले कुछ दिन जीकर देखना चाहती हूं। भले ही वे दिन थोड़े से हों।"

रामपाल कुछ देर सोचता रहा और फिर कहने लगा, "क्या तुम्हें यह विचार तब से नहीं आया, जब से तुम स्वयं कमाने लगी हो?"

"नहीं! अपितु नौकरी तो मैंने इसलिए करनी शुरू की थी कि मैं किसी तरह व्यस्त रहूं और मुझे यह ख्याल भूल जाए।···मैं शुरू से घर का अधिक काम भी इसीलिए करती रही हूं···मैं बच्चे के सभी काम भी इसीलिए अपने हाथों करती रही हूं···पर यह सब कुछ···!" अनीता ने थककर एक जम्हाई ली और कहने लगी, "इससे कुछ नहीं बनता।"

"हूं···" रामपाल कुछ पूछने लगा, पर उसे लगा कि उसकी ज़बान बहुत कस गई है। वह कुछ देर चुप रहा। फिर जैसे ज़बान पर बड़ा जोर लगाकर कहने लगा, "मेरा मतलब है···" रामपाल की ज़बान फिर रुक गई।

"कि मेरे जीवन में कोई मनुष्य है अथवा नहीं?" अनीता ने स्वयं ही कह दिया।

रामपाल ने कुछ न कहा। केवल उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा।

"है भी और नहीं भी।"

रामपाल को जीवन के किसी प्रश्न से अथवा उत्तर से डर नहीं लगता था क्योंकि वह सीधी तरह प्रश्न किया करता था और सरलता से प्रश्न को हल करता था। पर इस समय रामपाल को लगा कि जीवन केवल 'जोड़' और 'बाकी' का प्रश्न नहीं था, 'गुणा' और 'भाग' का प्रश्न नहीं था, जीवन एक पहेली थी जिसे हल करने से उसे इस समय डर लग रहा था।

"यह मैंने इसलिए कहा है कि वह आदमी मेरे जीवन में इतना नहीं

जितना मेरी कल्पना में है।"

कोई मनुष्य कितना अनीता के जीवन में है और कितना उसकी कल्पना में, इस सारी गिनती को छोड़कर रामपाल ने केवल यह जानना चाहा कि वह कौन है ?

"सागर..." अनीता अभी यह सोच ही रही थी कि वह सागर का नाम अपने पति को बताए अथवा नहीं" कि उसका नाम अनीता के मुंह से इस प्रकार निकल गया जैसे कोई सोया आदमी 'बरड़ा' उठता है।

रामपाल बहुत देर कुछ न बोला, जैसे वह कोई बड़ा चौड़ा हिसाब-किताब कर रहा हो। फिर अचम्भे में अनीता के मुंह की ओर देखते हुए कहने लगा, "मेरा ख्याल है कि उसे कलकत्ता गए काफी वर्ष हो गए हैं।"

"सात-आठ वर्ष।"

"इन वर्षों में कभी वह यहां आया है ?"

"एक बार।"

"कितने दिनों के लिए ?"

"मैं उससे घण्टा-भर मिली थी, मुझे नहीं मालूम, वह यहां कितने दिन रहा।"

"वह तुम्हें पत्र लिखता है ?"

"कभी नहीं।"

रामपाल को यह सब बड़ा अजीब लगा। और इस हैरानी को घटाने के लिए उसने वह बात भी पूछ ली, जिसे उसने सोचा था कि वह नहीं पूछेगा।

"तुम और सागर कभी......"

"जिन अर्थों में आप पूछना चाहते हैं, उन अर्थों में कभी नहीं।"

अनीता ने उत्तर दे दिया पर उसे ये सब प्रश्न और सब उत्तर इस लगे जैसे किसीकी घड़ी या साइकल खो गई हो और वह
रिपोर्ट लिखवा रहा हो।

रामपाल को आश्चर्य अवश्य हुआ, अत्यन्त आश्चर्य,

नहीं आया। थोड़े मिनटों के बाद ही रामपाल को अनुभव हुआ कि उसका आश्चर्य एक घोर निराशा बनता जा रहा था। इस निराशा से बचने के लिए उसने सोचा कि अगर उसे कुछ समय के लिए क्रोध आ सके तो शायद उसके लिए अच्छा हो। उसने फिर अनीता के मुंह की ओर देखा कि क्रोध को जगाने के लिए शायद उसे कोई रास्ता मिल जाए। अनीता का मुंह इतना कमजोर और उदास था कि रामपाल को लगा कि उसके पैर और भी गहरी निराशा में धंस गए थे।

कुछ देर बाद रामपाल ने एक निश्वास लिया और इतना अनीता को नहीं, जितना अपने-आपको कहा, "मेरे रिश्तेदार शुरू से ही मुझे कहते थे कि मैं तुमपर सख्ती किया करूं।"

"फिर तो बहुत अच्छा होता।" अनीता ने शीघ्रता से उत्तर दिया।

"अच्छा होता ?" रामपाल ने कुछ आश्चर्य से कहा।

"बहुत अच्छा होता और मेरे लिए यह सब कुछ आसान हो जाता। क्योंकि जो आदमी सख्ती करे उससे घृणा की जा सकती है और जिससे घृणा की जा सकती है और जिससे घृणा हो जाए उससे टूटने में देर नहीं लगती। पर मुश्किल तो तब होता है, जब कोई सख्ती न करे। उसका दिल दुखाने में भी कठिनाई होती है और उसके आगे झूठ बोलना भी कठिन होता है।" अनीता ने कहा और उसके आंसू बह निकले।

सात

अनीता बैठती, एक ठण्डी खामोशी उसके साथ बैठ जाती। अनीता चलती, एक ठण्डी खामोशी उसके साथ चल पड़ती। और इस तरह कई दिन बीत गए और वह हर स्थान पर इस खामोशी की परछाईं को लिए-लिए फिरती। अनीता के पति ने कहा था कि वह अनीता की बात का उत्तर सोच रहा है।

एक दिन इस ठण्डी खामोशी की नाड़ियों में गर्म लहू खौल उठा। अनीता दफ्तर जा रही थी। उसे बस में सागर का एक दोस्त मिला रामबाली। यह वही दोस्त था जिससे एक बार अनीता ने पता लेकर सागर को खत लिखा था। वह बिलकुल अगली सीट पर बैठा हुआ था, जब अनीता ने बस में चढ़ते हुए उसको पहचान लिया था। चाहे अनीता पिछली एक सीट पर बैठ सकती थी, पर उसने उस सीट पर किसी और स्त्री को बैठ जाने दिया ताकि वह खड़ी रहे और फिर वह भीड़ में से निकलते-निकलते अगली सीट के समीप हो सके—'शायद वह सागर की कोई बात करे...'

सागर के दोस्त ने जब अपने बायीं ओर अनीता को खड़े देखा, वह अपनी सीट पर से उठ खड़ा हुआ और उसने अनीता को बैठने के लिए कहा। अनीता सीट पर बैठना नहीं चाहती थी वह केवल खड़े-खड़े सागर का कोई ज़िक्र सुनना चाहती थी, पर उससे अधिक बार इनकार न हुआ और वह सीट पर बैठ गई।

सीट की पीठ पर हाथ रखकर सागर का दोस्त कुछ [illegible] रहा, फिर थोड़ा-सा अनीता की ओर झुककर पूछने [illegible] क्या हाल है ?"

अनीता हैरान थी, जैसे कह रही हो, "यह [illegible]

चाहती हूं, और यह बात तुम मुझसे पूछ रहे हो ?'

"अब तो पहले से कुछ आराम होगा।" सागर के दोस्त ने जब यह कहा तो अनीता को ख्याल आया कि हाल पूछने से उसका अभिप्राय कोई सूचना पूछने से नहीं था, सचमुच किसी बीमारी का हाल पूछने से था। और अनीता ने घबराकर उससे कहा, "वह बीमार है ?"

"तुम्हें नहीं मालूम अनीता ?"

"नहीं।"

"तुम्हें उसने खत नहीं लिखा ?"

"नहीं।"

"उसका नरवस ब्रेक डाउन हो गया था।"

"यह कब की बात है ?"

"काफी समय हो गया है। साल-भर हो चला है इस बात को। जब वह एक बार एक-दो दिनों के लिए दिल्ली आया था, शायद तुम्हें भी मिला था। उसके दूसरे महीने की बात है। मुझे भी तभी खत आया था, उसके बाद मैंने कई खत लिखे हैं, शरीफ आदमी जवाब ही नहीं देता।"

"पर अब तो ठीक होगा···" अनीता ने यह बात इतनी पूछी नहीं जितनी स्वयं को आश्वासन देने के लिए कही।

"अब तो पता नहीं, पर दो-तीन महीने हुए एक आदमी कलकत्ता से आया था। उसने मुझे बताया था कि सागर की सेहत बड़ी खराब है।" अचानक उस दोस्त ने बाहर की तरफ देखा और कहा, "तुम्हारा दफ्तर आ गया है अनीता।"

अनीता बस से उतर पड़ी, पर अपने दफ्तर के बाहर लगी हुई घड़ी की ओर देखते हुए उसे लगा कि वह भी एक घड़ी थी, समाज की दीवार पर लगी हुई घड़ी, जिसका दिल आयु-भर उसी स्थान पर बैठा टिक्-टिक् करता रहेगा और उसके ख्यालों की सुइयां उन्हीं हिस्सों पर सारी उम्र घूमती रहेंगी। पर उसे कभी भी पैरों के साथ चल सकना प्राप्त नहीं होगा।

अनीता कुछ देर दफ्तर में बैठी रही। अपने सामने रखे हुए दफ्तर के कागज़ों को देखती रही, पर फिर उसे लगा कि आज उसकी चाबी कहीं अटक गई थी। उसके दिल की टिक्-टिक् अब रुकती जा रही थी। उसने छुट्टी की अरजी लिखी और दफ्तर से उठकर बाहर आ गई।

नित्य की आदत के अनुसार अनीता अपने दफ्तर के बाहर बस की राह देखने के स्थान पर ठहर गई, पर जब उसके घर को जानेवाली बस आई, नित्य की आदत के अनुसार उससे बस में चढ़ा न गया।

जब बस चली गई तो अनीता सामने सड़क पर चलने लगी। वह इस सड़क पर क्यों चल रही है? यह सड़क आगे किस सड़क से मिलेगी? फिर वह सड़क आगे किस ओर मुड़ेगी? और फिर वह सड़क आगे कहाँ जाकर पहुँचेगी? अनीता को यह सब कुछ भूल गया। उसे केवल यह लगा कि वह चलते-चलते सागर के सिरहाने आ खड़ी है और दवा की एक शीशी में से सागर को दवा पिला रही है।···अब वह सागर के लिए चाय का एक प्याला बनाकर लाई है···अब इस समय वह चारपाई के पैताने बैठकर सागर के पाँवों को दबा रही है···अब इस समय···

पीछे से आ रही एक मोटर ने इतने ज़ोर का हार्न बजाया कि अनीता को लगा जैसे उसके सिर में कुछ टकरा गया था। अनीता ने दोनों हाथों से अपने सिर को टटोला और फिर थककर सामने चौरस्ते पर बने हुए एक बड़े-से चबूतरे पर एक वृक्ष की छाया में बैठ गई।

कुछ दूर दूसरे वृक्ष की छाया में चाहे एक बेंच भी पड़ा हुआ था और उससे हटकर भी एक बेंच था, पर अनीता को ठण्डे और नर्म घास का स्पर्श अच्छा लगा। अपने दोनों हाथों से घास को सहलाते हुए उसने अपने पैरों से चप्पलें उतार दीं और घास की सीलन पर पैरों की तलियां रख दीं।

एक हल्के-हल्के चैन में अनीता के अंग सुस्ता गए। पैरों की ओर से उठती धरती की ठंडक अनीता के माथे की नाड़ियों को सहलाने लगी और अनीता सोचने लगी, 'आखिर यह सब कुछ सम्भव क्यों नहीं हो सकता?

यह जिस तरह मैं कर रही हूं, सोचती कुछ हूं, करती कुछ हूं, यह सब मेरा अपना दोष है। और अन्त में यह किसीका कुछ न संवारेगा। इस तरह मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि मैं स्वयं ही किसी दिन अपना हाथ पकड़-कर अपने-आपको पागलखाने की सींखचों के पीछे डाल आऊंगी।' अनीता पागल हो जाने के विचार से कुछ कांप गई, 'पागल होकर जीने से तो मरना अच्छा है···'

अमलतास के वृक्ष से पीले फूल झड़ रहे थे। अनीता ने फूलों की एक मुट्ठी भरी और अपनी आंखों से लगाकर सोचने लगी, 'मेरे सामने दो रास्ते हैं। एक तो मैंने देख लिया है कि सीधा पागलखाने के दरवाज़े की ओर जाता है। और दूसरा···मुझे भी मालूम नहीं, वह कहां जाता है, और उस राह पर कितनी बाधाएं हैं। सामाजिक बाधाओं के अतिरिक्त···शायद कानूनी रुकावटें भी होंगी···और अधिक से अधिक मृत्यु की रुकावट होगी।' अनीता ने अपने मन में भाग्य के बड़े-से-बड़े अत्याचार की कल्पना कर ली और फिर एक निर्णय की तरह अपने-आपको कहा, 'पर फिर भी इस रास्ते की ओर जाना उस पहले रास्ते की ओर जाने से अच्छा है।'

अनीता ने पैरों में चप्पलें पहनीं और एक ही झटके में वह इस तरह उठकर खड़ी हो गई जैसे अभी और इन्हीं पांवों उसने दूसरे रास्ते की ओर चल पड़ना था।

आठ

अनीता ने एक-एक नजर सब वस्तुओं की ओर देखा। अलमारी में पड़े हुए अपने कपड़ों की ओर भी देखा और फिर मुह घुमा लिया। जैसे धोबी से कई घरों के कपड़े आपस में मिल गए हो और वह एक-एक कपड़े को देखती-पहचानती कह रही हो, 'यह भी मेरा नही, यह भी मेरा नही,' और अनीता ने सारे घर में नजर डालकर अपने-आपको कहा, 'इस घर मे मेरी केवल एक ही वस्तु है, मेरा बच्चा।'

अनीता ने स्कूल के प्रिंसिपल को एक पत्र लिखा कि वे रश्मि का नाम काटकर उसे अपने स्कूल का सर्टिफिकेट दे दें, ताकि वह दूसरे शहर मे जाकर रश्मि को किसी स्कूल मे दाखिल करा सके।

एक पत्र अनीता ने अपने दफ्तर मे लिखा कि उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया जाए। पर यह पत्र अनीता ने फाड़ डाला क्योकि उसे ख्याल आया कि अगर वह यह पत्र लिखेगी तो एक महीना अभी और उसे दफ्तर जाना पड़ेगा। अनीता ने त्यागपत्रवाला पत्र फाड़कर छुट्टी की दरख्वास्त लिखी कि उसका स्वास्थ्य अच्छा नही था, उसे एक महीने की छुट्टी दे दी जाए। अगले महीने, उसने सोचा कि वह त्यागपत्र लिखकर भेज देगी।

दूसरे दिन प्रातः अनीता ने रश्मि को स्कूल न जाने दिया और अपने पति को कहा, "आज मैं स्कूल से इसका सर्टिफिकेट लेकर चली जाऊंगी।" अनीता का पति कुछ देर अनीता के मुह की ओर देखता रहा, फिर वह बिना कोई उत्तर दिए अपने कागज-पत्र उठाकर अपने काम पर चला गया।

अनीता ने अपने वेतन से जमा किए हुए रुपयों का हिस

और बच्चे को साथ लेकर वह बाजार से कुछ वस्तुएं खरीदने के लिए चली गई।

दुपहर हो चली थी, जब अनीता का खरीदना समाप्त हुआ और फिर वह जल्दी-जल्दी रश्मि के स्कूल की ओर चल दी।

"क्षमा कीजिएगा। हम आपको सर्टिफिकेट नहीं दे सकते।" प्रिंसिपल ने नम्रता से कहा था पर अनीता को लगा जैसे प्रिंसिपल की अस्वीकृति एक ईंट की तरह उसके पैरों पर आ गिरी थी।

"पर बिना सर्टिफिकेट के तो वह कहीं दाखिल न हो सकेगा?"

"हां, बिना सर्टिफिकेट वह कहीं दाखिल नहीं हो सकेगा।"

"फिर आप···"

"इसके पिता की अनुमति के बिना हम इसे सर्टिफिकेट नहीं दे सक क्योंकि इसपर कानूनी अधिकार इसके पिता का है और इसके पिताजी प्रा ाकर हमें रोक गए हैं।"

अनीता जिस समय प्रिंसिपल के कमरे से बाहर आई तो उसे ल क उसकी आंखों को दिखाई देनेवाला समूचा रास्ता उसकी आंखों ानी में डूब गया था।

इस समय अनीता ने बच्चे का हाथ नहीं थामा हुआ था, ब ा अनीता का हाथ पकड़ा हुआ था। बच्चा जब मां को संभालकर घर ाया तो उसने मां के माथे पर हाथ लगाकर देखा कि मां को जोरों ज्वर था।

"ये दीवारें नहीं टूटेंगी···कभी नहीं टूटेंगी···"

अनीता ने अपनी अर्धचेतना में कहा और रोने लगी।

"ममी," नन्हे बच्चे ने अपनी दोनों मुट्ठियां बांधीं और मां की छ र लोटते हुए कहने लगा, "ममी, रोओ मत···मैं जब बड़ा होऊंग सारी दीवारें तोड़ दूंगा।···"

रोते-रोते अनीता बच्चे के मुंह की ओर देखने लगी। ज्वर के वे अनीता की आंखें चकरा रही थीं। बच्चे का मुंह उसे एक बच्चे का मु

लगा। एक शक्तिशाली और जवान मर्द का मुंह दिखाई दिया, एक सच्चे दोस्त का मुंह, एक सच्चे महबूब का मुंह जो इस समय एक मा से बातें नहीं कर रहा था, एक औरत की मजबूरी से बातें कर रहा था। बच्चे को मा के दुःख का कुछ ज्ञान न था। उससे केवल मा की आंखों के आंसू नहीं देखे गए और वह एक शाश्वत मर्द बनकर एक शाश्वत औरत के मुंह से आंसू पोंछ देना चाहता था।

अनीता ने तड़पकर अपने बच्चे को आलिंगन में कस लिया। अपने खून को आलिंगन में ले लिया और फिर अपने सिर में चढ़ते ज्वर के वेग से अचेत हो गई।

रात का आखिरी पहर था जब अनीता ने करवट बदली। उसे लगा कि उसने सिर पर गीले और ठण्डे कपड़ों की एक गठरी उठाई हुई थी जिसके नीचे उसकी गर्दन ऐंठ रही थी। अनीता ने हाथ से अपने सिर को सहलाया। उसके सिर पर सचमुच ही एक गीला और भारी कपड़ा लपेटा हुआ था। उसने हाथ से उस कपड़े को खींचा।

"अभी नहीं, थोड़ा बुखार और कम हो जाए," पास से एक बेगाने चेहरेवाली स्त्री ने कहा।

अनीता ने पहचानने का प्रयत्न किया कि वह इस समय कहां थी और यह स्त्री कौन थी। पर उससे न कुछ पहचाना गया, न कुछ पूछा गया। अत्यन्त गहरी नींद की सी कोई वस्तु उसकी आंखों में भर गई।

दूसरे दिन जब अनीता की नींद टूटी, तो उसने देखा, उसकी चारपाई के पास खड़ा उसका पति किसीसे बातें कर रहा था। वह दूसरा आदमी शायद डाक्टर था, क्योंकि अनीता को चेतना आते ही उसने झुककर अनीता के माथे को हाथ लगाया, उसकी बांह की नाड़ी को टटोला और फिर कुछ खड़ी हुई उस रातवाली स्त्री से दवाई देने के लिए कहा। यह ी, अनीता ने सोचा, डाक्टर के साथ की नर्स होगी।

"रश्मि···" अनीता की आंखें कमरे में कुछ ढूंढने ल

"वह स्कूल गया···" अनीता के पति ने अनीता के पास आकर कहा ौर फिर पूछा, "और कोई वस्तु चाहिए?"

"एक सिगरेट···"

अनीता के पति ने डाक्टर से पूछकर अनीता को एक सिगरेट दे दिया, र अनीता के मुंह में दवाई का कोई कड़वा स्वाद घुला हुआ था या ज्वर ा वेग था, उसे सिगरेट का स्वाद अजीब-सा लगा और उसने थककर सगरेट को एक ओर रख दिया।

कुछ दिन ज्वर का वेग कम न हुआ। देखते-देखते वह तेज़ी से बढ़ ाता और फिर एकदम उतर जाता। अनीता को लगता कि कभी वह ाहद गर्म पानी में डुबकी लेती थी और कभी उसका शरीर ठण्डे पानी में ाहाया होता।

जिस समय भी अनीता की आंखों में कुछ चेतना होती, वह कमरे में कुछ ढूंढ़ती दिखाई देती और फिर पूछती—

"रश्मि···?"

"वह स्कूल गया हुआ है।" जो भी अनीता की चारपाई के पास खड़ा ाता, उसको बताता।

फिर अनीता का ज्वर एक चाल में चढ़ने लगा। नित्य थोड़ा-सा और कुछ घण्टे। एक दिन सन्ध्या का समय था, अनीता ने रश्मि को बुलाने को कहा और जब उसे वही नित्य का उत्तर मिला, अनीता तड़पकर चारपाई पर बैठ गई, "यह कौन-सा समय है स्कूल जाने का? इस समय तो रात छाई हुई है।"

"रश्मि बोर्डिंग में चला गया है···यहां घर में उसे असुविधा होती थी ा···" जिस स्त्री ने यह बात कही, अनीता ने ध्यान से उसके मुंह की ओर देखा और अनीता को लगा कि वह नित्यवाली स्त्री नहीं थी, कोई और थी।

"तुम कौन हो?"

"तुमने मुझे पहचाना नहीं? मैं शान्ति हूं।"

"शान्ति ?···" अनीता ने अपनी स्मरण-शक्ति पर ज़ोर डाला और फिर उसे याद आया कि इस शान्ति को उसने कहीं देखा हुआ है। उस रात अनीता के पति ने उसे याद दिलाया कि शान्ति दूर की रिश्तेदारी में उसकी बहन लगती थी और उसे अनीता की सेवा के लिए विशेषकर बुलाया गया था।

उस दिन अनीता को शान्ति के मुंह की ओर देखकर जो कुछ पराया-पराया-सा लगा, वह थोड़े दिनों में ही दूर हो गया। शान्ति अनीता का उस नर्स की अपेक्षा कहीं अधिक ध्यान रखती थी। बैठी-बैठी अनीता के पांवों को दबाने लगती, बैठी-बैठी अनीता से रश्मि की बातें करने लग पड़ती। और फिर अनीता के कहने पर कोई किताब पढ़कर भी अनीता को सुना दिया करती थी।

फिर अनीता का ज्वर उतर गया। केवल जिस समय वह गुसलखाने में जाकर नहाती या मुंह-हाथ धोने का प्रयत्न करती, कपड़े बदलती, उसे घण्टे-भर के लिए हल्का-सा ज्वर हो आता, पर अनीता चकित थी कि उसके अंग नित्यप्रति घुलते जाते थे। उसे हर समय थकान चढ़ी रहती थी और उनमें धीरे-धीरे कोई वस्तु उसके प्राणों को सोख रही थी।

"बस थोड़ा संभल लो, फिर हम रश्मि को मिलने चलेंगे," अनीता का पति दूसरे-तीसरे दिन अनीता को कहता और अनीता पूरी शक्ति लगाकर अपने अंगों में धैर्य भरती।

'···जैसे मेरे अंगों में मेरा खून पानी बनता जा रहा है।' अनीता अपने-आपमें सोचती और फिर अपने हाथों को देखने लगती। हाथों और बांहों का रंग पीलापन पकड़ता रहता। अनीता को अच्छा न लगता और वह कई बार मुट्ठी भींचकर लाली की एक लहर अपनी नाड़ियों में ले आती। दवाई की खुराक पीते हुए वह हमेशा यह सोचती कि यह दवाई जब उसके खून में घुलेगी तो एक हरकत ले आएगी; पर वह जब भी दवाई पीती, उसका अन्तर् और भी घुलने लग जाता। थोड़े दिनों बाद अनीता ने प्रत्येक दवाई छोड़ दी। उसने एक हठ ठान लिया कि वह कोई भी दवाई नहीं पीए

अनीता ने दवाई छोड़ दी, पर पानी का घूंट भी अनीता को दवाई की भांति कष्ट देने लगा। वह कई बार तीव्र प्यास में पानी पीती, पर पानी पीकर उसकी जिह्वा और उसका तालु सूखने लगते। इन दिनों उसके हाथों और पैरों के पोरों पर अजीब बिवाइयां पड़ गई थीं। उसकी नाड़ी-नाड़ी में जैसे कुछ सूखता जा रहा था।

आधी रात का समय था। अनीता को नींद में भी अपनी शुष्क जिह्वा से सांस लेना कठिन हो गया और घबराहट में आंख खुल गई।

"पानी···" अनीता के मुंह से निकला पर उसने सोचा कि इस रात के समय में शान्ति को न जगाऊं और वह धीरे से उठकर कमरे में रखा हुआ पानी ढूंढ़ने लगी।

शान्ति शायद किसी खड़ाक से उठ बैठी। जल्दी से अनीता को चारपाई पर बिठाकर कहने लगी, "मैं अभी पानी ला देती हूं।"

कमरे में शायद पानी नहीं था। शान्ति साथ के कमरे में से निकलकर रसोई में से पानी लेने चली गई। शान्ति को गए अभी थोड़ा समय ही हुआ था, अनीता को लगा कि प्यास से उसका सांस अटक रहा था और उससे दो-एक मिनट भी प्रतीक्षा नहीं की जा सकेगी।

अनीता जब थिड़कते कदमों से शान्ति के पीछे-पीछे रसोई में गई शान्ति पानी से भरे हुए गिलास को घड़े के पास रखकर उसमें एक सफेद सी शीशी में से जाने कुछ कैसी बूंदें डाल रही थी।

अनीता स्तब्ध रह गई। उसने अपनी ओर से शान्ति को पुकारा, प उसकी आवाज़ शायद उसके गले से बाहर न निकली, क्योंकि अनीता व स्वयं सुनाई न दी। शान्ति ने जब पानी का गिलास हाथ में पकड़कर पी घुमाई तो सामने अनीता खड़ी हुई थी। अनीता ने शान्ति की आंखों में देख और शान्ति ने अनीता की आंखों में। फिर शान्ति कुछ कहने लगी थी f उसके शब्द थिड़क गए। अनीता को शान्ति की थिड़की हुई आवाज़ ने जा कैसी हिम्मत दे दी, उसने ज़ोर से पूछा, "यह तुमने पानी में क्या डाल है?"

"कुछ नहीं···" शांति ने इतना जिह्वा से न कहा जितना सिर हिलाकर।

अनीता को घबराहट में यह पता न लगा था कि शान्ति ने अपने हाथ की शीशी को कहां रख दिया था। उसने शान्ति से ही पूछा, "अभी तुमने हाथ में एक शीशी पकड़ी हुई थी, वह कहां है?"

शान्ति मुस्करा दी और धैर्य से कहने लगी, "आपने दवाई पीने से इनकार कर दिया था, पर डाक्टर ने कहा था कि दवाई अवश्य देनी चाहिए। इसलिए मैंने दवाई की एक-दो बूंदें आपके पानी में मिला दी हैं।"

अनीता ने पानी का गिलास हाथ में लेकर देखा। न पानी का रंग बदला हुआ था, न पानी की गन्ध, तो भी अनीता ने पानी न पिया और कहने लगी, "यह कैसी दवाई है? ला मुझे शीशी दिखा।"

शान्ति ने दुपट्टे की कन्नी से बंधी हुई एक छोटी-सी शीशी खोली और अनीता को पकड़ा दी। शीशी पर किसी भी दवाई का कोई नाम लिखा हुआ नहीं था। दवाई बिलकुल पानी-जैसी थी, जिसका कोई रंग न था। अनीता ने गिलास का वह पानी उडेल दिया और घड़े में से और पानी लेकर पी लिया। दवाई की शीशी अनीता ने अपने पास रख ली।

अनीता ने चारपाई पर लेटते समय दवाई की शीशी अपने सिरहाने के पास रख ली। पर अभी उसे लेटे थोड़ी देर ही हुई थी कि वह फिर चारपाई से उठी। उसने चाबियां लेकर अपनी अलमारी को खोला और शीशी को अलमारी में रख दिया। फिर रात को अनीता को काफी देर नींद न आई।

दूसरे दिन सवेरे अनीता जब जागी तो उसके नौकर ने उसे चाय का एक प्याला देते हुए कहा, "आज आप बड़ी देर से जगी हैं। मैंने रोज़ के समय पर चाय बनाई थी, पर वह ठण्डी हो गई। आपको जगाया भी, पर आप जागी नहीं। अब मैं दूसरी बार चाय बनाकर लाया हूं।"

अनीता ने चाय का घूट भरा और फिर उसे रात की ... याद

हो आई। अचानक अनीता के मुंह से निकला, "शान्ति कहां है ?

"शान्ति बीबी तो सवेरे की गाड़ी से चली गई हैं।"

चाय का प्याला अनीता के हाथ में ही रह गया और वह नौकर के मुंह की ओर देखने लगी कि वह यह क्या कह रहा है।

"मालूम नहीं क्या बात हुई। अभी कितनी ही रात बाकी थी जब शान्ति बीबी ने मुझे जगाकर एक तांगा मंगवाया और स्टेशन पर चली गईं।"

"साहब कहां हैं ?" अनीता ने एक बार पूछा और फिर अपने तकिये के नीचे रखे हुए चाबियों के गुच्छे को ढूंढ़ने लगी।

"साहब शायद गुसलखाने में हैं।" नौकर ने बताया और फिर पूछा "चाय ठीक नहीं बनी ? आपने चाय नहीं पी।"

"अभी पीती हूं।" अनीता ने कहा और तकिया उठाकर देखने लगी कि चाबियां कहां हैं। चाबियां तकिये के नीचे नहीं थीं। अनीता ने चारपाई के नीचे देखा कि शायद चाबियां नीचे गिर गई हों। चाबियां चारपाई के नीचे भी नहीं थीं।

अनीता घबराकर चारपाई से उठने लगी थी कि उसे याद आया, को चाबियां उसने बिस्तरे की कन्नी उठाकर दरी और खेस की त में रखी थीं। अनीता ने खेस की कन्नी उठाई और देखा कि चाबियां वह पड़ी हुई थीं। अनीता ने चाबियां हाथ में पकड़ लीं और फिर घूंट-घूंट कर चाय पीने लगी।

चाय पीकर जब अनीता चारपाई पर लेटने लगी तो वह फिर विक हो उठी। उसने चाबियां लेकर अलमारी को खोला और अवाक् रह गई रात में जो शीशी उसने अलमारी में रखी थी, अलमारी में वह शीशी न थी।

कितनी देर अलमारी के खाली खाने को ढूंढ़-ढूंढ़कर अनीता थक ग और फिर अलमारी को उसी तरह खुली छोड़कर वह चारपाई की ओ लौट आई। अनीता जब चारपाई पर लेट गई अनायास उसकी आंखों

'यह सब शान्ति ने क्या किया ? क्यों किया ?' और अनीता का कुछ भी सोचने से पहले दिल किया कि अगर दुनिया उसे उल्टे हाथों मारना चाहती है तो वह स्वय ही सीधे हाथों क्यों नही मर जाती।

एकदम अनीता के मन मे आया कि वह अभी उठकर खिड़की से कूद जाए। कितना ऊंचा मकान था, तीन मंजिला मकान। और अनीता ने अपने ख्यालों मे गली के फर्श पर पड़ी हुई अपनी लाश की कल्पना की। फटा हुआ सिर···टूटी हुई टांग···खून का गढा···और चारों ओर लोग ही लोग···अनीता को एक उकताहट-सी हो आई और उसने सोचा, 'क्या मालूम इस तरह गिरने से जान भी निकलेगी अथवा नही···जाने कितनी देर तड़पना होगा···और जाने कितनी देर लोगों के हाथो मे रहना पड़ेगा···' लोगो के विचार से अनीता की नाड़ियो मे क्रोध का एक थपेड़ा-सा लगा। 'आदमी को मरकर भी लोगो के हाथो मे रहना पड़ता है। एक लाश का नंगे ब भी वह लाश के पास नही रहने देते। नहलाना, सवारना, उसके कपड़े बदलना···यह एक मरे हुए मनुष्य से मजाक नही तो और क्या है ?···'

और सोचते-सोचते अनीता को लगा कि यह खिड़की से कूदकर मरने की बात एकदम व्यर्थ है। 'राह जाते लोग भी मेरे टूटे हुए अंगों को देखने···यह कभी नही हो सकता···' और अनीता को कुछ दिन पीछे अखबार में पढ़ी उस नवविवाहिता लड़की का स्मरण हो आया जो अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर जल गई थी। अनीता एकदम काप उठी, 'आदमी जीते हुए भी एक तरह से आग मे जले और मरने की घड़ी मे भी अपने शरीर को आग का दुःख दे···'

आग की भयानकता से घबराकर अनीता का ख्याल सहसा पानी की ओर चला गया। 'बल्कि पानी की मौत उससे कही अच्छी है। कम से कम जलना तो नही पड़ता। ठण्डे और बहते पानी मे आराम से अपने शरीर को पानी के हवाले कर दे···सास की तकलीफ तो कुछ देर ही होती, फिर होश ही नही रहते होंगे···' अनीता ने कुछ आश्वस्त ह पर फिर उसे अनुभव हुआ जैसे उसकी नर्म-नर्म टांग पर कि

ने दांत गड़ा दिए हों। अनीता ने सहमकर अपनी टांग को टटोला। फिर अनीता को विचार आया कि एक जीवित शरीर को जल-जीवों के हवाले कर देना भी घटिया बात थी। और अनीता की आंखों के सामने एक तेज़ चलती गाड़ी के पहिए घूम गए। अनीता ने जब लोहे के कई मन भार को सोचा तो उसे कुछ कष्ट न हुआ। पर साथ ही उसे गाड़ी में बैठे हुए... सैकड़ों लोगों का ख्याल आया और उसे एक कचकचाहट हुई, 'लोगों के पैरों तले कुचले जाना...सैकड़ों-हजारों गैरों के पैरों तले...' और प्राणों के ऐसे अपमान से घबराकर अनीता ने सोचा, 'कोई ऐसी दवा होनी चाहिए, एक बार खा लो और फिर आराम से बिस्तर पर लेट जाओ। ऐसी दवा जिससे तड़पना भी न पड़े और जिससे मृत्यु भी अनिवार्य हो...'

'इस तरह की दवाई कहां मिल सकती है?' अनीता सोचने लगी, 'इधर-उधर की दवा खाने से तो मृत्यु भी अनिवार्य नहीं होती। आदमी कुछ खाए भी और फिर मृत्यु भी न हो।' अनीता को सोचते-सोचते एक क्रोध-सा आने लगा, 'आत्मघात दोष क्यों गिना जाता है इस दुनिया में? दुनिया में जीना भी जुर्म और मरना भी जुर्म...मानव जैसे जन्म से ही मुजरिम होता है...''

जीने और मरने के नियम को सोचते अनीता के सामने वह अवस्था आई, जो एक असफल प्रयत्न करनेवाले आदमी की होती है, 'अपाहिज...' अनीता कांप उठी। इस कंपकंपी ने अनीता के अंग-अंग को झकझोरा और पूछा, 'सामाजिक तौर पर तुम शायद अब भी अपाहिज हो, फिर शारीरिक तौर पर भी ऐसी हो जाओगी...यह तुम्हारा घड़ा हुआ अंग-अंग...' अनीता के शरीर में उठती कंपकंपी ने उसके अंग-अंग को सहलाया, उसके बिखरे हुए बालों को संवारा और फिर वह कभी रश्मि के स्मरण से और कभी सागर के ख्याल से खेलने लगी।

अनीता का पति जब काम पर जाने के लिए तैयार होकर अनीता के कमरे में आया, अनीता ने और कुछ पूछने के स्थान पर रश्मि का हाल पूछा। रामपाल ने रश्मि की बात की, अनीता से कोई आवश्यकता की

वस्तु पूछी ग्रौर फिर बताया कि शान्ति को शायद रात को कोई दुःस्वप्न ग्राया था। वह अपने घरवालों की कुशल-क्षेम जानने के लिए सवेरे ही ग्रपने घर चली गई है।

शान्ति के इस प्रकार ग्रकस्मात् चले जाने पर रामपाल चेकित नहीं था। ग्रनीता ने एक बार उसके मुंह की ग्रोर देखा ग्रौर एक बार सामने खुली हुई ग्रलमारी की ग्रोर। रामपाल चुप था, पर वह ग्रलमारी जैसे सारे का सारा मुंह खोलकर कुछ पूछना चाहती थी।

"रात को···" ग्रनीता कुछ कहने लगी थी कि उसकी ग्रावाज रुक गई। ग्रनीता ने बरबस उसे रोक लिया।···'मेरे पास इस बात का क्या सबूत है? सबूत तो वह जाती हुई साथ ही ले गई', ग्रनीता ने सोचा, 'इस सन्देह का कहीं ग्रन्त न होगा। यह शान्ति के साथ ग्राया था ग्रौर शान्ति के साथ ही चला जाए तो ग्रच्छा है।'

चाहे ग्रनीता को ग्रनुभव हुग्रा कि यह सन्देह शान्ति के साथ ही नहीं जा सकता, पर उसे यह भी लगा कि ग्रगर एक बार यह उसकी जिह्वा पर ग्रा गया तो सदा के लिए मेरी जिह्वा पर खड़ा रहेगा।···ग्रौर सदा के लिए मेरी ग्रांखों में बैठकर हर किसी के मुंह की ग्रोर देखता रहेगा।

ग्रनीता ने सारे सन्देह को सामने की खुली ग्रलमारी में रख दिया ग्रौर ग्रलमारी को हाथ से बन्द कर दिया।

अपनी इमारत की नींव किस तरह डाले, उसे मालूम न था कि इस नींव पर वह जिस चीज़ का भी निर्माण करेगा,वह थोड़ी देर वाद ही मुंह के वल गिर पड़ेगी।

और अनीता को अपने वच्चे का पत्र पढ़कर अपना हाल उस वास्तु-कार-सा लगा, 'मैं उस धरती पर खड़ी हूं जिसके अंग-अंग में भूकम्प वसा हुआ है।' और अनीता सोचने लगी, 'मैं इस धरती पर अपनी शेष आयु की इमारत किस तरह वनाऊं?'

अनीता ने वच्चे का पत्र चूमकर संभाल लिया और फिर अपनी छोड़ी हुई किताव को पढ़ने लगी। इस किताव का लेखक आगे कह रहा था, "जिस प्रकार पानी की परत पर एक जहाज़ तैरता है, अगर मेरी इमारत भी इस कच्ची धरती पर भार डालने की अपेक्षा इसमें झूलने लग जाए तो वह गिरने से वच सकती है। इस भूकम्प से लड़ने के स्थान पर अगर मैं इससे सहानुभूति करने लग जाऊं···" अनीता ने पुस्तक एक ओर रख दी और सोचने लगी कि वह अपने जीवन के भूकम्प से किस प्रकार एक समझौता कर सकती है।

कई दिन से शहर में किसी इकवाल चित्रकार के चित्रों की प्रदर्शनी लगी हुई थी। अनीता ने कई वार जाने के लिए सोचा, पर उसके पैर नित्य ही आलस्य कर जाते थे। आज जो अनीता ने अपने वच्चे के पत्र से और पुस्तक के लेखक से कुछ उत्साह उधार लिया तो उसके पैरों में शक्ति आ गई। वह उठी और मुंह-हाथ धोने के लिए गुसलखाने में चली गई।

गुसलखाने में पैर रखते हुए अनीता की दृष्टि सामने की खूंटी पर पड़ी, जहां एक तौलिया टंगा हुआ था। अनीता के पैर जहां के तहां रह गए। अनीता ने देखा, सामने खूंटी पर टंगे तौलिये का छोर खून से भरा हुआ था।

अनीता के सिर को एक चक्कर आया और उसकी टांगें कांपीं और वह गुसलखाने के फर्श पर वैठ गई। कितनी ही देर अनीता ने अपने माथे को अपने हाथों में दवाए रखा। फिर प्यास से उसका गला सूख चला।

अनीता ने अपना सिर उठाया और गुसलखाने के नल की ओर देखा।

नल बन्द था पर खोलने से उसमें पानी आ जाता था। अनीता ने हाथ ऊंचा किया पर आंखें जान-बूझकर ऊंची न उठाई कि कहीं वे खूटी पर टंगे तौलिये को देखकर घबरा न जाएं।

नल से पानी बहने लगा पर पानी के नीचे अंजलि करते समय अनीता को लगा कि साथ की खूटी पर टंगे हुए तौलिये में से शायद खून की बूंद टपककर उसकी अंजलि में पड़ जाएगी। अनीता ने चौंककर हाथ पीछे कर लिए। फिर आगे किए, पानी की अंजलि भरी और गिरा दी। फिर एक और अंजलि भरी और पानी को ध्यान से देखा। और फिर अनायास उसकी आंखें खूंटी पर टंगे हुए तौलिये की ओर चली गई।

अनीता ने देखा, फिर देखा, पर तौलिये को कहीं भी खून नहीं लगा हुआ था। सारा तौलिया सफेद का सफेद था।

नल का पानी चलता रहा; अनीता की अजलि में पड़ता रहा और गिरता रहा। पर अनीता को पानी पीना भूल गया। वह तौलिये की ओर देखती जा रही थी कि उसने अभी जो छोर खून से भरा हुआ देखा था, वह कहां गया?

आखिर अनीता ने उठकर तौलिये को हाथ लगाया और उसके चारों छोर देखने लगी। तौलिये के एक छोर पर लाल रंग का लेबल लगा हुआ था जिसपर मिल का नाम लिखा हुआ था। 'यह लाल रंग का लेबल ही मुझे खून-सा दिखाई दिया होगा।' अनीता ने धैर्य से सोचा और फिर उसका मन भर आया, मैं अपनी ओर से शान्ति की बात भुला बैठी हूं। पर वह शायद मुझे कभी न भूल सकेगी···वह नहीं चाहती थी कि मैं जीती रहूं··· वही मौत का ख्याल···कत्ल का ख्याल···खून का ख्याल···'

अनीता ने जिस दिन शान्ति को पानी के गिलास में कोई वस्तु घोलते हुए देखा था, उसने बात को वहीं का वहीं छोड़ दिया था। उसने यह भी नहीं सोचना चाहा कि आखिर शान्ति ने ऐसा क्यों किया था? [illegible] अपनी इच्छा से किया था या किसीके कहने पर? और अ[illegible] कहने पर किया था तो किसके कहने पर? अनीता ने स्पष्ट [illegible]

कभी न सोचा था, पर अपने ही अन्दर शायद सब कुछ सोचा था। और अब यह बात 'किसके कहने पर' तक पहुंची थी तो अनीता इसके उत्तर से घबरा गई थी। और इसीलिए शायद उसने यह बात वहीं रहने दी थी, पर आज अनीता यह सब सोचने लगी। और उसे लगा कि अगर आज नहीं तो कल, कल नहीं तो किसी और दिन वह अवश्य पागल हो जाएगी। 'पागल होने में कुछ कसर बाकी है क्या ?' अनीता ने अपने-आपको कहा, 'तौलिये के छोर पर लगा हुआ लाल लेबल मुझे खून-सा दिखाई देने लगा है,' और अनीता ने एक निश्वास लिया, 'मेरे हाल पर अगर कोई रोने-वाला है भी तो मैं ही हूं और तो कोई रोएगा भी नहीं मेरे हाल पर !'

अनीता ने मुंह-हाथ धोया और कपड़े बदले तथा चित्रों की नुमाइश देखने चली गई। आज अनीता को यह सब कुछ अपने मन पर जोर डाल-कर करना पड़ा। गुसलखाने की घटना के बाद अनीता के अंगों में वही पुरानी शिथिलता आ गई थी, पर आज वह सोच रही थी, 'अगर लावे से भरी हुई धरती पर ही मुझे कोई इमारत बनानी है तो फिर इस तरह घबराने से क्या होगा ?'

प्रदर्शनी में जाकर अनीता ने एक-एक चित्र को देखा, कितनी-कितनी देर ठिठककर देखा। 'यह रंगों का खेल। यह ख्यालों का खेल...' अनीता सोचती रही, सराहती रही। पर इन चित्रों में एक चित्र था। किसीके सारे शरीर पर आंखें ही आंखें उग आई थीं। दो आंखों के स्थान पर जैसे कोई सैकड़ों आंखों से किसी वस्तु को देख रहा हो। अनीता जब इस चित्र के सामने खड़ी हुई, तो वहीं खड़ी रही।

अनीता के सारे अंग पिघलकर आंखें ही आंखें बन गए। उस एक चित्र की जैसे दो प्रतियां बन गई। दीवार से लगे हुए चित्र की आंखें न जाने अपनी कल्पना में किसके मुंह की ओर देख रही थीं, पर इस फ़र्श पर खड़े हुए चित्र की आंखें अपनी कल्पना में सागर के मुंह की ओर देख रही थीं।

"यह चित्र आपको पसन्द आया क्या ?" इकबाल ने जब अनीता के पास आकर उससे पूछा तो अनीता ने पहले उसके मुंह की ओर देखा। और

फिर खाली कमरे में।

"आठ बज गए हैं ?" अनीता ने पूछा।

"सवा आठ। इसीलिए लोग चले गए हैं।"

"मुझे तनिक भी समय का ख्याल न रहा।"

"तो यह मेरा चित्र सफल है···"

"आपने क्या नाम रखा है इसका ?"

"याद !"

"यह याद क्या चीज होती है, जो समय को हाथ से पकड़कर ठहरा देती है।"

इकबाल ने उत्तर न दिया। अनीता ने ध्यान से उसके मुंह की ओर देखा। बिलकुल मासूम चेहरा था। पर बड़ा तीखा और स्वस्थ।

"इतनी छोटी आयु मे आपने यह सब कुछ किस तरह बना लिया ?"

"मैं बहुत छोटा लगता हूं ?"

अनीता को हंसी आ गई। उसने एक बार फिर इकबाल के मुंह की ओर देखा और कहा, "नहीं ! जिसके पास इस प्रकार की कला हो, वह कभी छोटा नहीं होता।"

अनीता लौटने लगी थी तब इकबाल ने कहा, "आपने ये दायीं ओर के चित्र नही देखे।"

"आज तो प्रदर्शनी का समय समाप्त हो गया है। फिर आ जाऊंगी कल-परसों।"

"कल ?"

"अच्छा कल।"

बड़ी साधारण-सी बात थी। पर अनीता ने देखा, एक छोटा-सा वचन लेकर इकबाल के मुंह पर चमक आ गई थी। और अनीता को बाहर सड़क पर चलते हुए इकबाल से एक हल्की-सी ईर्ष्या हो आई, 'जो लोग जीवन के छोटे-छोटे आश्वासन से बदल सकते हैं, वे कितने अच्छे

दूसरे दिन अनीता को जब दफ्तर से छुट्टी हुई, वह घ

उसे बीते दिन का वचन स्मरण हो आया। वह घर जाने की अपेक्षा प्रदर्शनी की ओर चली गई।

कमरे में इक्का-दुक्का लोग थे। अनीता को देखते ही इकबाल ने उसके पास आकर उसे इतनी आत्मीयता से बुलाया जैसे वह अनीता का कोई चिरपरिचित हो। वह उसके साथ होकर उसे चित्र दिखाने में लग गया।

अनीता चित्रों की ओर देखते-देखते कभी अचानक इकबाल की ओर देखने लगती और सोचती, 'इतनी कच्ची उम्र में कला में इतनी निपुणता कैसे प्राप्त कर ली ?'

"यह प्रदर्शनी और कितने दिन रहेगी ?" कुछ देर बाद अनीता ने पूछा।

"पांच दिन और।"

"मैं एक बार फिर किसी दिन आऊंगी, आज मैं जल्दी में हूं।"

"क्यों ?"

इकबाल की इस 'क्यों' पर उसे स्वयं भी हंसी आ गई और अनीता को भी। अनीता ने प्रश्न की स्वाभाविकता को बनाए रखने के लिए उतनी ही स्वाभाविकता से कहा, "वास्तव में मैं घर से नहीं आई, दफ्तर से आई हूं। थकी हुई हूं।"

"आपने चाय पीनी होगी ?..."

"हां, चाय भी पिऊंगी घर जाकर।"

"चाय यहीं पी लीजिए।"

अनीता ने अभी उत्तर नहीं दिया था कि उसने देखा, इकबाल उसे यह बात कहकर कुछ बेआराम-सा हो गया था।

शायद कुछ पूछता रहा था। जैसे उसने यह बात अपने स्वभाव के अनुसार न कही हो।

"चाय पीते हुए आप मुझे इस चित्र की कहानी सुनाएंगे ?" अनीता ने हंसकर पूछा।

"किस चित्र की ?"

"आखोंवाले चित्र की।"

इकबाल ने लजाकर अपना नीचे का होंठ दांतों में काटा और फिर र हिलाकर 'हां' कर दी।

प्रदर्शनी से बाहर बड़ी सड़क पर कई अच्छे चायघर थे। अनीता और कबाल एक अच्छे दिखते चायघर में जाकर चाय पीने लगे।

"सच इकबाल, आपने इतनी छोटी आयु में इतनी निपुणता कैसे प्राप्त र ली?"

"मेरी आयु इतनी छोटी नहीं, जितना छोटा मैं दिखाई देता हूं। अगर ही आप मेरे छोटे भाई को देखें तो चकित हो जाएं। इतना लम्बा, वा और जवान दीखता है…मैं बचपन में अपनी दादी को कहा करता ा कि जब मुझे जन्म लेना था, तूने मेरी मां को कुछ नहीं खिलाया था। र जब मेरे भाई ने जन्म लेना था, तूने मेरी मां को मक्खन खिलाया था।"

"तब मेरा अनुमान है कि जब आप जन्मे थे, आपकी दादी ने आपकी ां को मक्खन तो चाहे न खिलाया हो, पर कोई ऐसी वस्तु अवश्य खिलाई ागी जिससे आपमें इतनी कला आ गई?"

"वह भी यही बात कहा करती थी। उसे आंखों से दिखाई नहीं देता ा। वह हाथों से मेरी पतली-पतली बांहों को टटोलने लगती थी और फिर रे सिर को चूमकर कहा करती थी कि जब तुम्हें जन्म लेना था, मैंने म्हारी मा को 'चासकू' खिलाया था। तुम देख लेना, तुम बड़े समझदार कलोगे। चासकू से बुद्धि बढ़ती है।"

"आपकी मां…?"

"मैं छोटा-सा था जब उसकी मृत्यु हो गई थी।"

"आपको इस कला का शौक किससे हुआ?"

"किसीसे नहीं। मैं तो गांव में जन्मा, गांव में पला, जहां सो-सौ ोस तक केवल गेहूं ही होता या या कपास होती थी, और कुछ नहीं होता ा। हमारे यहां किसानों के जो लड़के स्कूल नहीं जाते उन्हें [illegible] सवेरे ाटी-लस्सी भी नहीं मिलती। वे सवेरे उठकर खेतों में चले [illegible]

जो लड़का स्कूल जाता है, उसे सवेरे-सवेरे लस्सी या दूध मिल जाता है। मैं शुरू से ही इकहरे शरीर का था। मुझसे खेतों में जाकर काम नहीं हो पाता था, इसीलिए मैं स्कूल जाने लगा। साथ ही इस तरह मेरी दादी मुझे सवेरे-सवेरे एक परांठा बनाकर खिला दिया करती थी।"

"आपको पढ़ाई अच्छी लगती थी?"

"बहुत अच्छी नहीं लगती थी, न ही मैं बहुत पढ़ता था, पर क्लास में सदा प्रथम आ जाता था। स्कूल में मुझे एक बड़ा दुःख यह था कि मेरी आयु के लड़के मुझे पीटते बहुत थे।"

"क्यों?"

"वे होते मेरी आयु के थे, पर लगते बहुत बड़े थे। मैं जब उनसे 'कौड़ियां' खेलता था और जीत जाता था तो वे मुझसे कौड़ियां भी छीन लेते और पीटते भी थे। पीटने में तो मैं उनकी बराबरी न कर पाता, पर यह कसर मैं दूसरी बातों में निकाल लेता था।"

"शायद जीतने के इसी हठ ने आपके हाथों में इतनी कला भर दी हो?"

"मैं हरे रंग की स्याही लेकर कागज़ों पर मोर के पंख बनाता रहता और फिर उन्हें लड़कों को दिखा-दिखाकर उन लड़कों को नीचा दिखाता था।"

"फिर?"

"फिर एक बार शौक का मारा मैं गर्मियों की छुट्टियों में शहर चला गया। वहां किसी पेंटर की शागिर्दी कर ली। खाना 'ढाबे' पर खा लेता और उसके ब्रुश धो देता, रंग भरकर देता और सारा दिन चित्र देखता रहता था।

"शहर में मंडुए भी होते थे, पर मेरे पास देखने के लिए पैसे नहीं हुआ करते थे। मैं खड़ा रहकर चित्र देखता रहता और गाने सुनता रहता था। एक बार......"

"क्या हुआ एक बार?"

"अब हंसी आती है याद करके। एक बार शहर के मंडुए में मिस कज्जन का थिएटर आया था। मिस कज्जन का ज़िन्दा नाच और गाना। और मेरा बहुत मन आता था मिस कज्जन को देखने के लिए। कम से कम अढ़ाई आने टिकट था, पर मेरे पास अढ़ाई आने भी नहीं थे। मैं अन्दर सोडा और बर्फ ले जानेवाले लड़कों को बड़ी स्पर्धा से देखता रहा कि वे कितनी आसानी से अन्दर चले जाते थे और मिस कज्जन को देख आते थे?"

"फिर सोडा और बर्फ नहीं बेची?"

"सचमुच बेची। पहले तो सोडेवाले मुझे बोतलें ही न दें, पर फिर उन्होंने दे ही दीं। मैं अन्दर चला गया। एक-दो बोतलें बेची और फिर बाकी की एक ओर रखकर मिस कज्जन को देखने लगा।"

"फिर घर आकर मिस कज्जन का चित्र बनाया।"

"बहुत-से चित्र बनाए······"

"और यह 'याद' चित्र? यह बड़ी आंखोंवाला?"

"यह?···सब कुछ आज ही पूछ लेंगी? इतना भी मैंने आपको जो कुछ सुनाया है पहले कभी किसीको नहीं सुनाया। शायद इसलिए कि मैं बहुत दिनों से आपसे परिचित होना चाहता था···"

"मेरे परिचित?"

"आपका चित्र बनाना चाहता था।"

"मेरे विचार मे आपने कल से पहले मुझे कभी नहीं देखा।"

"मैंने आपको तब देखा था, जब आपके पिताजी जीवित थे। वैसे आपका विवाह हो चुका था। एक बार आप अपने पिताजी के घर आई हुई थीं, मुझे पता चला तो मैं आपको मिलने भी गया था।"

"मुझे कुछ स्मरण नहीं।"

"आपको स्मरण नहीं हो सकता, क्योंकि आपको मालूम ही नहीं। शायद आप सो रही थीं। आपको उन्होंने जगाया नहीं।"

"फिर आप लौट गए थे?"

"मैं वापस चला गया और जाने क्यों मैंने हठ ठान लिया कि मैं फिर कभी आपके घर नहीं जाऊंगा।"

अनीता चकित होकर इकबाल के मुंह की ओर देखने लगी। कितना मासूम मुख था, पर कितना हठी ! और अनीता सोचने लगी, 'शायद सभी कलाकारों में यह हठ इतना बड़ा होता है, इतना बड़ा स्वाभिमान।'

"क्या सोच रही हैं आप ?"

"आपके हठ का कारण सोच रही हूं।"

"कारण मुझे स्वयं नहीं मालूम हो पाता था, पर हठ खूब ठन गया था। अब भी अगर आप कल चित्र देखने न आतीं तो मैं आपको कभी न मिलता।"

"यूं लगता है जैसे आपको दुखाया किसी एक ने हो और उसका रोष आप सभीपर निकाल रहे हों।"

"शायद······"

"आप वह बात बताने चले थे।"

"मैं जब आर्ट स्कूल में पढ़ता था, वहां एक लड़की पढ़ती थी—मनजीत ! वह मुझे बड़ी अच्छी लगती थी। उसके सामने बैठकर मैं उसकी तस्वीर नहीं बना सकता था। दो-तीन लड़कों को छोड़कर उसके दायीं-बायीं पंक्ति में बैठ जाता और उसका चित्र बनाया करता था। शायद उन चित्रों में से कोई अभी तक उसने संभालकर रखा हो।···मैंने उसका चित्र उसे कभी न दिखाया था।"

"क्यों ?"

"वह बहुत बड़े बाप की बेटी थी। कार में आती थी, कार में जाती थी। मैं सोचता था कि अगर उसे कभी मालूम भी हो गया कि मैं उसका चित्र बनाता हूं तो वह मुझपर गुस्सा करेगी।"

"आपने कभी भी उसे कुछ न बताया ?"

"कभी नहीं। केवल उसके नाम के प्रथम अक्षर के साथ मैं कई बार अपना नाम लिखता रहा।"

"एम० इकवाल ?"

"हां, एम० इकबाल।"

"और आज उसे देखनेवाली दो आंखें शायद सैकड़ों आंखें बनकर उसे ढूंढ़ती रहती हैं।"

अनीता की इस बात ने इकबाल की सोई हुई कहानी को जगा दिया। कहानी शायद कभी नहीं सोई थी, पर इस तरह जगकर कभी इकबाल की आंखों में नहीं आई थी; और इस तरह पिघलकर उसके आंसू कभी नहीं बनी थी।

इकबाल ने जल्दी से आंसू पोंछ डाले और कहा, "मैं कभी रोता नहीं हूं। आज जाने मैं कैसे रो उठा हू···"

इकबाल ने ध्यान से अनीता के मुंह की ओर देखा और अपने मन को टटोला, 'आज मैं इस औरत के सामने क्यों रो उठा हूं? आज मैंने इससे इतनी बातें की हैं जितनी कभी किसीसे नहीं की। क्या मैं इसके चेहरे में अपनी मर चुकी मां के चेहरे को खोज रहा हूं या अपनी खोई हुई मनजीत के चेहरे को?' और इकबाल ने जितनी सादगी से यह बात सोची उतनी ही सादगी से अनीता से कह दी।

अनीता हंस दी, "आपकी मां की आयु से मैं छोटी हूं और आपकी मनजीत की आयु से बड़ी। पर क्या यह आवश्यक है कि कोई किसीमें से किसी रिश्ते को ही ढूंढ़ता हो? घड़ी-पल का पहचान का न कोई रिश्ता होता है, न कोई आयु।"

"मैं कल से बहुत खुश हूं।"

"सच?"

"सच।"

दस

दुपहर के खाने के बाद अनीता अक्सर अपने दफ्तर से उठकर एक लाइब्रेरी में चली जाया करती थी। यह लाइब्रेरी दफ्तर के साथ सटी एक सड़क पर थी जहां जाने के लिए कुछ मिनट चलना होता था।

गर्मियों की दुपहर थी। दफ्तर का कमरा ठण्डा था। आगे लाइब्रेरी का कमरा भी ठण्डा था। पर बीच का रास्ता, चलने के विचार-मात्र से ही पैरों को साल रहा था। अनीता ने छुट्टी का काफी समय जाने के विचार में निकाल दिया। बाकी जब पचीस मिनट के लगभग रह गए उसके पैर स्वयमेव लाइब्रेरी की ओर चल निकले। जैसे कोई उसे नहीं, उसके पैरों को बुला रहा हो।

रास्ते की तपिश को एक सांस में पीकर अनीता ने लाइब्रेरी के बड़े कमरे का दरवाजा खोलकर एक पैर अन्दर रखा तो अन्दर की ठण्डक में एक लम्बा सांस भरा। यह लम्बा और सुख का सांस अभी अनीता की एड़ियों तक भी नहीं पहुंचा था, जब अनीता ने सामने की मेज़ पर पड़ी हुई अखबारों पर दृष्टि दौड़ाई जहां एक साप्ताहिक अखबार का पृष्ठ खुला पड़ा था जिसपर सागर का चित्र था। सागर का चित्र और उसके साथ खड़ी एक लड़की का चित्र। चित्र के नीचे लिखा था, "दोस्ती का यह रिश्ता शायद विवाह के रिश्ते में बदल जाएगा।" अखबार के अक्षर कई बार अपने स्थान से हिले, आगे-पीछे होकर एक निरर्थक-सा वाक्य बन गए, पर फिर अपने-अपने स्थान पर आ गए और अनीता के कानों में अपने वाक्य का अर्थ समझाने लगे, 'अनीता! सागर तुमसे रूठ गया है। सदा के लिए रूठ गया है।' और अनीता को लगा अभी, बिलकुल अभी उसने जो एक लम्बा और सुख का सांस लिया था, वह उसके जीवन का अन्तिम सुख का सांस था।

और अब उसने मानु-भर फुट से तबे रास्ते पर चलना था।

अनीता ने लाइब्रेरी के दरवाज़े में खड़ी होकर बाहर की सड़क को देखा। सारी सड़क अपने शरीर में से बड़ी तपिश से बरस रही थी। अनीता बाहर सड़क पर आ खड़ी हुई। शायद सड़क की तपिश से अपनी तपिश की तुलना के लिए।

"एक गलती की इतनी बड़ी सज़ा!" अनीता के मुंह से निकला। पर साथ ही अनीता ने अपना होंठ काट लिया. "हर किसीको अपनी गलती छोटी लगती है और दूसरे को दी हुई सज़ा बड़ी।" और फिर अनीता बोलती गई, "जो मनुष्य अपने हाथों किस्मत को दुत्कार दे, उसके साथ ऐसा ही होना चाहिए···ऐसा ही होना चाहिए···कभी किसीने दर पर आई हुई किस्मत को भी लौटाया है?···मैंने लौटाया है।" और कहते-कहते अनीता यह भी कहने लगी, "एक दोष तो ईश्वर भी क्षमा कर देता है, सागर! तुमने मेरा एक दोष भी क्षमा न किया!···"

और अनीता को लगा कि अब उसे सामने कुछ दिखाई नहीं दे रहा। सामने की सारी सड़क उसकी आंखों के पानी में डूब गई थी।

अनीता ने दुपट्टे के छोर से अपनी आंखें पोंछीं, 'यूंही सड़कों पर रोती फिरूंगी?···' अनीता ने अपने-आपको टोका और एक कोना खोजने लगी, जी भरकर रोने के लिए।

"यह कोना न दफ्तर में है, न घर में।" अनीता के मुंह से निकला। उसने दफ्तर की सड़क भी छोड़ दी और घर की सड़क भी। वह बच्चे के स्कूल को जाती सड़क पर चलने लगी। उसने बच्चे को कुछ बताना नहीं था, बच्चे से कुछ पूछना नहीं था, पर वह एक बार बच्चे की तली से अपने आंसू पोंछना चाहती थी। उसके हाथों की छाया में खड़ी होकर रोना चाहती थी।

'आज ये बच्चे को मिलने नहीं देंगे। वे केवल महीने में एक बार मिलने देते हैं···' अनीता को याद आया और उसके पांव ठिठक गए।

'इतनी सड़कें हैं, पर कोई भी सड़क उस कोने को नहीं जाती, जहां

दस

दुपहर के खाने के बाद अनीता अक्सर अपने दफ्तर से उठकर एक लाइब्रेरी में चली जाया करती थी। यह लाइब्रेरी दफ्तर के साथ सटी एक सड़क पर थी जहां जाने के लिए कुछ मिनट चलना होता था।

गर्मियों की दुपहर थी। दफ्तर का कमरा ठण्डा था। आगे लाइब्रेरी का कमरा भी ठण्डा था। पर बीच का रास्ता, चलने के विचार-मात्र से ही पैरों को सांल रहा था। अनीता ने छुट्टी का काफी समय जाने के विचार में निकाल दिया। बाकी जब पचीस मिनट के लगभग रह गए उसके पैर स्वयमेव लाइब्रेरी की ओर चल निकले। जैसे कोई उसे नहीं, उसके पैरों को बुला रहा हो।

रास्ते की तपिश को एक सांस में पीकर अनीता ने लाइब्रेरी के बड़े कमरे का दरवाज़ा खोलकर एक पैर अन्दर रखा तो अन्दर की ठण्डक में एक लम्बा सांस भरा। यह लम्बा और सुख का सांस अभी अनीता की एड़ियों तक भी नहीं पहुंचा था, जब अनीता ने सामने की मेज़ पर पड़ी हुई अखबारों पर दृष्टि दौड़ाई जहां एक साप्ताहिक अखबार का पृष्ठ खुला पड़ा था जिसपर सागर का चित्र था। सागर का चित्र और उसके साथ खड़ी एक लड़की का चित्र। चित्र के नीचे लिखा था, "दोस्ती का यह रिश्ता शायद विवाह के रिश्ते में बदल जाएगा।" अखबार के अक्षर कई बार अपने स्थान से हिले, आगे-पीछे होकर एक निरर्थक-सा वाक्य बन गए, पर फिर अपने-अपने स्थान पर आ गए और अनीता के कानों में अपने वाक्य का अर्थ समझाने लगे, 'अनीता ! सागर तुमसे रूठ गया है। सदा के लिए रूठ गया है।' और अनीता को लगा अभी, बिलकुल अभी उसने जो एक लम्बा और सुख का सांस लिया था, वह उसके जीवन का अन्तिम सुख का सांस था।

और अब उसने आयु-भर धूप से तपे रास्ते पर चलना था।

अनीता ने लाइब्रेरी के दरवाजे में खड़ी होकर बाहर की सड़क को देखा। सारी सड़क अपने शरीर में से उतनी तपिश ले रही थी। अनीता बाहर सड़क पर आ खड़ी हुई। शायद सड़क की तपिश से अपनी तपिश की तुलना के लिए।

"एक गलती की इतनी बड़ी सजा!" अनीता के मुंह से निकला। पर साथ ही अनीता ने अपना होंठ काट लिया 'हर किसी को अपनी गलती छोटी लगती है और दूसरे को दी हुई सजा बड़ी।' और फिर अनीता बोलती गई, "जो मनुष्य अपने हाथों किस्मत को ठुकरा दे, उसके साथ ऐसा ही होना चाहिए···ऐसा ही होना चाहिए···कभी किसी ने दर पर आई हुई किस्मत को भी लौटाया है? ···मैंने लौटाया है।" और कहते-कहते अनीता यह भी कहने लगी, "एक दोष तो ईश्वर भी क्षमा कर देता है, सागर! तुमने मेरा एक दोष भी क्षमा न किया!···"

और अनीता को लगा कि अब उसे सामने कुछ दिखाई नहीं दे रहा। सामने की सारी सड़क उसकी आंखों के पानी में डूब गई थी।

अनीता ने दुपट्टे के छोर से अपनी आंखें पोंछीं, 'कहां सड़कों पर रोती फिरूंगी?···' अनीता ने अपने-आपको टोका और एक कोना खोजने लगी, जी भरकर रोने के लिए।

"यह कोना न दफ्तर में है, न घर में।" अनीता के मुंह से निकला। उसने दफ्तर की सड़क भी छोड़ दी और घर की सड़क भी। वह बच्चे के स्कूल को जाती सड़क पर चलने लगी। उसने बच्चे को कुछ बताना नहीं था, बच्चे से कुछ पूछना नहीं था, पर वह एक बार बच्चे की छाती में अपने आंसू पोंछना चाहती थी। उसके हाथों की छाया में खड़ी होकर रोना चाहती थी।

'आज वे बच्चे को मिलने नहीं देंगे। वे केवल महीने में एक बार मिलने देते हैं···' अनीता को याद आया और उसके पांव ठिठक गए।

'इतनी सड़कें हैं, पर कोई भी सड़क उस कोने को नहीं जाती, जहां

बैठकर कोई रो सके।' और अनीता के मन में आया, अगर कहीं वह इस समय उस होटल में जा सकती, उस होटल के उस कमरे में खड़ी हो सकती, उस कमरे के उस पलंग पर बैठ सकती, जहां बैठकर उसने अपनी किस्मत का पृष्ठ फाड़ा था, तो शायद वह कोना उसके आंसुओं को थाम लेता।' और अनीता उस होटल की ओर जाती सड़क पर चलने लगी।

होटल के ठीक सामने पहुंचकर अनीता ने होटल के आगे खड़ी हुई गाड़ियों को देखा। गाड़ियों से उतरता सामान देखा और उसे ख्याल आया, 'मेरे पास तो सामान ही कुछ नहीं। और सामान के बिना मुझे कमरा कौन देगा…'

न जाने अन्तर् की वेदना की जलन थी या बाहर की तपिश की, उसका सिर चकरा गया। अनीता ने एक खाली टैक्सी की ओर हाथ उठाया और बिना कुछ कहे उसमें बैठ गई। सामने की सड़क से निकल जब टैक्सी एक चौराहे पर पहुंची तो ड्राइवर को पूछने की आवश्यकता पड़ी कि आगे किधर जाना है।

अनीता का माथा तप रहा था। उसे ज्वर हो आया था। ज्वर के वेग में अनीता ने अपने-आपसे पूछा, "किधर?" गाड़ी की खिड़की खोलने के लिए अनीता ने अपना दायां हाथ हिलाया। 'किधर' शब्द को ड्राइवर ने शायद 'इधर' समझा और गाड़ी दायीं ओर मोड़ ली। वह सड़क भी जब चौराहे तक पहुंच गई तो ड्राइवर ने फिर पूछा, "किधर?" अनीता ने खिड़की से बाहर देखा। बायें हाथ की ओर मुड़ती सड़क के कोने पर जो इमारत थी, वहां लिखा हुआ था 'प्रदर्शनी'। अनीता को एकदम इकबाल का स्मरण हो आया और उसने ड्राइवर को हाथ से उस इमारत के आगे गाड़ी रोकने का संकेत किया।

कोई प्रदर्शनी अब भी लगी हुई थी। पर इकबाल के चित्रों की प्रदर्शनी कई दिनों पीछे समाप्त हो चुकी थी। इसलिए इकबाल वहां नहीं था। चाहे पिछले दिनों इकबाल चार-पांच बार अनीता को मिला था, पर यहीं प्रदर्शनी में और दो बार अनीता के दफ्तर आकर। पर अनीता के पास

उसके घर का पता नहीं था। ग्रनीता जब लौटने लगी तो किसीने उसे इकबाल के घर का तो नहीं, पर उसके स्टूडियो का पता बता दिया। ग्रनीता ने वह 'पता' ड्राइवर को बताया ग्रौर फिर ग्रर्धचेतना की ग्रवस्था में गाड़ी में ग्राकर बैठ गई।

इकबाल वहीं था। ग्रनीता ने जब दरवाज़ा खटखटाया, इकबाल को कितनी ही देर विश्वास न हुग्रा कि ग्रनीता सचमुच इस तरह पूछते-ढूंढते उसके पास ग्राई थी!

ग्रनीता किसी कुर्सी पर बैठने की ग्रपेक्षा लकड़ी के दीवान पर बैठ गई, जहां पर इकबाल ने कई ग्रखबारें ग्रौर फाइलें बिखेरी हुई थीं। ग्रनीता ने कुछ ग्रखबारों को इकट्ठा कर ग्रपने लिए कुछ स्थान बनाया ग्रौर कुछ ग्रखबारों को सिर के नीचे रखकर तकिया बनाया।

"मुझे थोड़ा पानी दो।" ग्रनीता ने कहा ग्रौर पानी पी लेने के बाद वह इकबाल से पूछने लगी, "ग्रापने इकबाल, कभी जीवन में वह दिन देखा है जब ग्रापके पास रहने के लिए कोई स्थान न हो?"

"लाहौर की बात है, मैं जब ग्रार्ट स्कूल की ग्रन्तिम परीक्षा दे चुका था, परिणाम निकल चुका था, तब मैं स्कूल के नियमानुसार होस्टल में नहीं रह सकता था। तीन दिन मैं पहले ही ग्रधिक रह चुका था; चौथे दिन जब रात के ग्यारह बजे के लगभग मुझे स्कूल का नियम फिर बताया गया तो मैं उसी समय ग्रपना बैग उठाकर वहां से चल दिया। वहां से चला ग्राया, पर मुझे पता नहीं था कि किधर जाऊं। स्टेशन पर चला गया। पहले एक चाय की दूकान पर बैठकर चाय पी, ताकि रात को मुझे नींद न ग्राए। कुछ देर प्लेटफार्म पर घूमता रहा, फिर एक गाड़ी ग्राई, पता किया तो वह गुजरांवाले जा रही थी। मैंने हिसाब लगाया, ग्रगर मैं उस गाड़ी में च[illegible] जाऊं ग्रौर वापसी में लौट ग्राऊं तो रात बीत जाएगी। इस तरह मैं [illegible] गाड़ी पर चढ़ गया।..." इकबाल जब यह सारी बात सुना [illegible] ख्याल ग्राया कि ग्रनीता की बात में ग्रावश्यकता से ग्रधिक उ[illegible] ग्राते ही यह उसका पहला प्रश्न क्यों था? इकबाल ने चिन्ता...

--

आपने यह बात क्यों पूछी है अनीता ?"

अनीता ने उत्तर न दिया।

"अनीता !"

"हां।"

"ऐसा दिन चाहे और किसीपर भी आ जाए, पर आपपर नहीं आ सकता।"

"क्यों ?"

"आपके पास क्या नहीं ? आपका अपना घर···आपका···"

"बाहर से शायद सब कुछ साबुत दिखाई देता हो, पर···"

अनीता ने अखबारों के तकिये से सिर उठाकर इकबाल की ओर देखा और फिर कहा, "आज जानते हो मैं आपके कमरे में क्यों आई हूं ? ···मुझे कहीं भी कोई ऐसा कोना न मिला जहां बैठकर मैं रो सकती···" अनीता ने फिर अखबारों के तकिये पर सिर रख लिया और कहा, "पराई छत के नीचे बैठकर तो आंसू भी अपने नहीं ज़ान पड़ते।"

इकबाल ने कुछ नहीं कहा। शायद कोई भी अनीता की इस बात को सुनकर कुछ न कह सकता।

फिर अनीता भी न बोली। कमरे में एक भयानक खामोशी छा गई। केवल अनीता की बन्द आंखों में से जब कुछ आंसू उसके गालों पर से जाने की अपेक्षा उसके सिर के नीचे पड़ी अखबारों पर गिर पड़ते थे तो 'टप्-टप्' उसकी आवाज़ आती थी।

फिर शायद अनीता सो गई, या उसके सिर में ज्वर की अवसन्नता छा गई। उसे कुछ मालूम नहीं।

कमरे में हलका-हलका अंधेरा हो चुका था, जब अनीता ने आंखें खोलीं। उस समय उसने देखा कि इकबाल ने उसके सिर के नीचे अखबारों के स्थान पर कोई नर्म-सा कपड़ा रखा हुआ था और वह अनीता का सिर दबा रहा था। जाने कितनी देर से दबा रहा था।

"मैंने आपके लिए चाय बनाई थी। पर अब शायद ठण्डी हो गई

होगी। मैं और गर्म चाय बना देता हूं।" इकबाल ने कहा और उठने लगा।

अनीता ने एक बार इकबाल की ओर देखा, वही मासूम चेहरा था, तीखा और स्वस्थ, जो अनीता ने पहले दिन प्रदर्शनी में देखा था। पर इस समय वह बहुत उतरा हुआ था, शायद अनीता के दुःख से द्रवित हो उठा था। अनीता ने एक लम्बा सांस लिया और कहा, "इकबाल, आपको याद है, जिस दिन हमने पहले दिन चाय पी थी तो बहुत बातें की थीं?"

"हां..."

"उस दिन आपने मुझे एक बात कही थी..."

"क्या?"

"कि आप मेरे चेहरे में अपनी मर चुकी मां के चेहरे को ढूंढ रहे थे या अपनी खोई हुई मनजीत के चेहरे को।"

"मैं सच कहता हूं अनीता, मुझे अब भी ऐसा लगता है कि जैसे आपका मुख मेरी मां का मुख हो, पर उससे छोटा हो गया हो, या मनजीत का मुख हो, पर उससे कुछ बड़ा हो गया हो।"

"इकबाल! आज मुझे भी ऐसा लग रहा है जैसे आपका मुख सागर का मुख हो, पर कुछ छोटा हो गया हो, और या मेरे बच्चे का मुख हो जो आज बड़ा हो गया हो।"

इसके बाद चाय पीते हुए अनीता ने इकबाल को अपने जीवन का सब कुछ सुना दिया। इकबाल अनीता के जीवन मे इस दुनिया का पहला आदमी था जिसे उसने अपना सब कुछ अपने मुंह से सुनाया था।

"आपने यह सब कुछ कभी सागर को क्यों न सुनाया? यह बच्चे की बात, उसकी आकृति की बात। कोई इस तरह भी किसीकी कल्पना मे जी सकता है? अगर कभी वह सुन लेता...?" इकबाल ने तड़पकर कहा।

अनीता ने एक गहरा सांस लिया और कहा, "इकबाल! मुहब्बत में सभी शक्तियां होती हैं, पर एक बोलने की शक्ति नहीं होती।"

ग्यारह

शाम के ठीक पांच वजे थे। अनीता अपनी कुर्सी से उठने लगी थी कि इकवाल का फोन आया, "अनीता! अगर आज आपके पास एक घण्टा-भर समय हो तो मैं आपके दफ्तर आ जाऊंगा। आपको छुट्टी होने ही वाली होगी, हम एक घण्टा कहीं भी वैठ जाएंगे।"

"अच्छा!" अनीता ने उत्तर दिया और इकवाल की प्रतीक्षा करने लगी। इकवाल ने शायद कहीं दूर से फोन किया था, उसे आने में विलम्ब हुआ। अनीता छोटी-सी पदचाप से भी चौंक उठती, पर जव वह पदचाप इकवाल की न निकलती वह फिर एक पास रखी हुई किताव को पढ़ने में लग जाती। कुछ समय वाद अनीता ने किताव एक ओर रख दी और कमरे में से उठकर वाहर के वरामदे में आ गई।

'यह प्रतीक्षा,' अनीता सोचने लगी, 'मुझे अच्छी लगती है। प्रतीक्षा पहले भी मेरे जीवन में थी, पर वह नितान्त और किस्म की थी।'

वरामदे में खड़े-खड़े अनीता का मन तनिक उत्साहित हो उठा, 'वह भी मैं एक रेत का घर वना रही थी, यह भी एक रेत का घर वना रही हूं; पर चलो, यह रेत तो किसीने लाकर दी। पहले तो जैसे रेत भी मैं स्वयं लाई थी।'

और अनीता और भी गहरे विचारों में डूव गई, 'मुझे केवल यह मालूम नहीं होता था कि मैं कोई रेत का घर क्यों वनाना चाहती हूं? मेरे हाथ मेरे पैर इससे खेलते हुए जी उठते हैं, पर यूं जैसे इनमें जान ही नहीं होती...'

सामने की सारी सड़क भले ही अनीता को दिखाई दे रही थी, और इकवाल उसी सड़क पर से आया था, पर अनीता को उसके आने का ज्ञान

तभी हुआ जब उसने अनीता के पास आकर उसे आवाज़ दी।

"मुझे पहुंचते देर हो गई ?" इकबाल ने जल्दी में कहा।

"नहीं," अनीता ने जब यह उत्तर दिया, उसने औपचारिकतावश 'नहीं-नहीं' कहा था। वह दिल में सोच रही थी कि इकबाल जल्दी आ गया था, बहुत जल्दी आ गया था। वह अभी कुछ देर अकेले ठहरे रहना चाहती थी और इकबाल की प्रतीक्षा करते हुए वह यह सोचना चाहती थी कि वह इकबाल की प्रतीक्षा क्यों कर रही थी।

"चलें ?"

"कहां ?"

"कहीं भी।

"चलो।"

समीप के एक अच्छे होटल में जाकर जब इकबाल ने चाय मंगवाई तो अनीता से पूछा कि वह साथ में क्या खाना पसन्द करेगी।

"कुछ भी नहीं। खाली चाय।"

"कोई भी चीज़, भले ही थोड़ी-सी।"

"रोज़ खाली चाय पीती हूं शाम को।"

"पर आज···"

"आज कोई विशेष बात है ?"

"नहीं, विशेष बात कोई भी नहीं।"

इकबाल का मुख सजाया हुआ था, इसलिए अनीता ने फिर पूछा कि आज अवश्य कोई विशेष बात थी। इकबाल ने कुछ देर तो कुछ न बताया, पर फिर चाय पीते हुए उसने बताया कि आज उसका जन्मदिन था।

अनीता ने 'बैरे' को बुलाया और ताज़ी बनी चीजें लाने के लिए कहा।

"मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?"

"कोई विशेष बात नहीं थी बताने योग्य।'

"यह विशेष नहीं थी ?"

"मैंने आज तक अपने जीवन में अपना जन्मदिन नहीं मनाया। कभी किसी दोस्त को बताया भी नहीं। पर आज न जाने क्यों, सवेरे से ही मेरा मन कर रहा था कि आपको बताऊं।"

"मुझे सवेरे क्यों न बताया? आपका फोन तो उस समय आया था जिस समय मैं दफ्तर से जाने लगी थी। अगर एक मिनट भी देर से आता तो मैं चली गई होती।"

"मैं दिन-भर यही सोचता रहा कि आपको बताऊं या नहीं।"

"सच आपने पहले कभी यह नहीं बताया?"

"कभी नहीं।"

"क्यों?"

"अकेला मैं इसको क्योंकर मनाता?" इकबाल ने लजाकर मुंह झुका लिया। और फिर कहा, "आपने कभी अपना जन्मदिन मनाया है?"

"मैं?...अपना तो कभी नहीं मनाया, पर किसीका अवश्य मनाती रही हूं। अकेले बैठकर मनाती रही हूं।"

"सागर का?"

"हां!"

"अकेली बैठकर?"

"बिलकुल अकेली बैठकर।"

"वह कैसे?"

"एक बार मैंने किसी अंग्रेज़ स्त्री की डायरी पढ़ी थी। उसे हंगरी की सरकार ने ब्रिटेन की जासूस होने के सन्देह में पकड़ लिया था और सात वर्ष एक कोठरी में बन्द किए रखा। उस अंधेरी कोठरी में रहते हुए भी वह स्त्री प्रत्येक वर्ष क्रिसमस मनाया करती थी। काली डबलरोटी उसे खाने के लिए मिलती थी। उसी डबल रोटी को काट-काटकर वह कुछ अक्षर बना लिया करती थी और उन अक्षरों को जोड़-जोड़कर वह कोठरी में पड़े हुए लकड़ी के एक मेज़ पर दो पंक्तियां जोड़ लिया करती थी। डबलरोटी को हाथों में मलकर एक फूल भी बना लिया करती थी। जेल के डाक्टर

और से जो कभी कोई दया उसे मिलती थी, वह कई बार रंगीन कागज़ों में
लिपटी होती थी। इन रंगीन कागजों को वह डबलरोटी के फूलों पर लगाकर सजा लिया करती थी। बस कुछ इसी प्रकार ही मैं···मैं सागर का जन्मदिन मनाती रही हूं।"

"सागर तो शायद इस बात को जानता भी न हो।"

"नहीं, वह कुछ नहीं जानता।"

चाय का बिल आया। अनीता ने झट से वह बिल अपने हाथ में ले लिया।

"मुझे इस तरह अच्छा नहीं लगेगा।" इकबाल ने हारकर कहा, "चाय पीने के लिए तो मैंने आपको बुलाया था।"

अनीता ने जब बिल दे दिया तो इकबाल को कहा, "मैं सदैव खारी खुशी मनाती रही हूं। पर आज···"

"खारी खुशी?"

"क्योंकि सब मेरी खुशी भी आंसुओं में डूबी हुई होती थी। पर आज वह खारी नहीं। क्या यह कम बड़ी बात है?"

होटल से बाहर आकर सड़क पर चलते हुई अनीता ने कहा, "आज, इकबाल, आपके आने से पहले आपकी प्रतीक्षा करते हुए सोच रही थी कि आखिर मैं आपकी प्रतीक्षा क्यों कर रही थी? और साथ ही इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए खुश क्यों थी?"

इकबाल ने नज़र भरकर अनीता की ओर देखा। इकबाल की आंखों में एक धूप चमक रही थी।

"उस समय मुझे यह पता नहीं चलता था, पर अब लगता है जैसे मुझे मालूम हो गया है।"

"क्या?" इकबाल चुप रहना चाहता था, पर यह 'क्या' उसके मुंह से जाने कैसी उत्सुकता में निकल गया।

"यह कि मैं आपसे बहुत बातें कर सकती हूं। सभी बातें। इस अकेलेपन में मुझे किसीकी बहुत आवश्यकता थी। आप नहीं जानते··· ···झे क्या

दे दिया है। यह अकेलापन अत्यन्त भयानक होता है।"

इकबाल की धूप की तरह चमकती आंखों में हल्की-सी छाया उतर आई और यह छाया अनीता ने देख ली।

"आप कुछ चुप से हैं इकबाल ?"

"नहीं।"

"फिर मुझे यों क्यों लगा है ?"

इकबाल कुछ देर चुप रहा, जैसे अपने उत्तर को स्वयं ही ढूंढ़ता रहा। फिर कहने लगा, "शायद आप ठीक कहती हैं अनीता। पर यह मुझे स्वयं भी पता नहीं चल रहा, मैं चुप क्यों हो गया हूं।"

"शायद इसलिए कि मैंने जो बात की है, वह एक ओर की आवश्यकता है, केवल मेरी आवश्यकता है।"

"या शायद इसलिए कि यह अधिक आवश्यकता की बात नहीं। जाने कब आपकी यह आवश्यकता मिट जाए।···"

अनीता को रोने की सी एक हंसी आ गई और फिर कहने लगी, "मुझे न तो कभी सागर मिलेगा और न मेरी आवश्यकता मिटेगी। पर इकबाल, ही किसी दिन इतनी दूर चले जाएंगे कि आपको मेरी आवश्यकता भी न रहेगी।"

इकबाल ने कुछ उत्तर देने के स्थान पर अपनी जेब में हाथ डाला और एक पत्र अनीता के हाथ में थमा दिया। अनीता ने पत्र पढ़ा। यह एक सरकारी दफ्तर का पत्र था जिसमें इकबाल को इण्टरव्यू के लिए बुलाया गया था।

"नौकरी लगने की मुबारकबाद अभी दूं या इण्टरव्यू के बाद ?"

"इण्टरव्यू हो चुका है।"

अनीता ने पुनः पत्र की ओर देखा। पत्र के ऊपर आज से बीस दिन पीछे की तारीख पड़ी हुई थी। साथ ही अनीता ने देखा कि यह पत्र यू० पी० सरकार का था। यह उसने पहले नहीं देखा था। स्पष्ट था कि इकबाल ने दिल्ली से बाहर चले जाना था।

सड़क के किनारे लगा हुआ वृक्ष, अनीता को लगा, उसके कदमों के आगे आ गया था और वह ध्यानमग्न चलते-चलते उस वृक्ष से टकरा गई थी।

"आप ठहर क्यों गई हैं, अनीता ?" इकबाल ने कहा।

"जाने मेरे सिर में एक चक्कर-सा आया है।" अनीता ने बायें हाथ के पोरों से अपनी दोनों आंखें मलीं और फिर आंखें झपकाकर सामने की सड़क की ओर देखा।

अनीता को सामने की सड़क दिखने से हट गई और उसे अपने सामने रेल का स्टेशन दिखाई देने लगा। रेल की पटरी, रेल का प्लेटफार्म और एक सूटकेस को पकड़कर खड़ा हुआ सागर······

सागर के इस शहर से जाने के दिन और आज इकबाल के चले जाने के दिन में कई वर्षों का अन्तर था। पर यह अन्तर जाने कैसे मिट गया। अनीता को लगा कि वह स्टेशन के प्लेटफार्म के ऊपर खड़ी हुई थी और सामने सागर एक गाड़ी में चढ़ रहा था।

इकबाल ने अनीता का हाथ पकड़कर उसे एक बेंच पर बिठाया।

"आपकी तबीयत ठीक नहीं।"

"अभी ठीक हो जाएगी।"

"पानी लाऊं कहीं से ?"

अनीता ने उत्तर देने के स्थान पर, खीजकर इकबाल के मुंह की ओर देखा और फिर मुंह फेर लिया। अनीता के मन में आया कि वह [illegible] यहां क्यों ठहरा हुआ था ? अगर इसने चला जाना था या चले [illegible] तो अभी क्यों नहीं चला जाता ? अनीता यह सब कहना चाहती थी, पर उसके टूटे हुए शरीर से कुछ सहन नहीं हो पा रहा था। [illegible] निकल गया, "आप, इकबाल, इस समय चले जाएं। [illegible] घर चली जाऊंगी।"

"अनीता !" इकबाल ने घबराकर कहा।

"मैं अकेली रहना चाहती हूं।" अनीता

की ओर देखा नहीं।

इकवाल चुप हो गया, वह वहां से गया नहीं।

"आप जाएं इकवाल।" अनीता ने फिर कुछ देर बाद कहा।

"मैं इस तरह अकेले छोड़कर नहीं जा सकता।" इकवाल ने कहा और पैरों में पहने हुए बूट इस तरह उतार दिए जैसे निश्चिन्त होकर अधिक समय बैठने के लिए तैयार हो गया हो।

अनीता का हाथ आगे बढ़ा जैसे वह इकवाल को बलपूर्वक वहां से उठा देना चाहती हो—एक धक्का देकर वहां से उठा देना चाहती हो; और अनीता ने देखा कि उसका हाथ गुस्से में कांप रहा था। इकवाल ने अपने दोनों हाथों से अनीता का हाथ पकड़ लिया।

"इकवाल!" अनीता ने खीझकर कहा और अपना हाथ छुड़ा लिया।

अनीता जाने के लिए उठी तो एक कागज़ उसके आंचल से गिरकर घास पर जा पड़ा। यह वही सरकारी पत्र था जो इकवाल ने अनीता को पढ़ने के लिए दिया था। अनीता ने झुककर कागज़ को उठाया और फिर उसे इकवाल को थमाकर वह शीघ्रता से एक ओर चल पड़ी।

इकवाल ने उस कागज़ को फाड़कर एक ओर फेंक दिया और अनीता के पीछे आते हुए कहने लगा, "अकेली मत जाइए, अनीता। अंधेरा हो गया है। मैं घर छोड़ आता हूं।"

कागज़ के टुकड़े हवा से उड़कर अनीता के पैरों में आ गए। अनीता एक पल चौंकी पर फिर अपने ध्यान में चलती गई।

"आज इस तरह मेरा जन्मदिन मनाकर मुझसे रूठ जाना था?" इकवाल ने अनीता के साथ-साथ चलते हुए कहा।

"मैं रूठी नहीं हूं। मैं भला क्यों रूठूंगी।" अनीता इस समय कुछ कहना नहीं चाहती थी, पर यह रूठने की बात सुनकर उसे कुछ कहना पड़ा।

"वास्तव में अनीता, आप मुझपर गुस्सा नहीं, आप अब तक सागर पर गुस्सा किए हुए हैं। इसी तरह एक दिन सागर को कोई पत्र आया था और वह इस शहर से चला गया था।" इकवाल ने फिर अनीता के साथ-

साथ चलते हुए कहा।

अनीता को लगा कि वह रो पड़ेगी, अभी इस सड़क पर रो पड़ेगी। अपने होंठ को दांतों में काटकर अनीता ने कहा, "इकबाल, अगर आप मुझे इतना समझते हैं तो फिर मुझे मेरे हाल पर क्यों नहीं छोड़ देते···ईश्वर के लिए मुझसे कोई बात न कीजिए, मैं बहुत दु:खी हूं इस समय···आप नही जानते, आपके इस चले जाने से···" आगे अनीता का गला रुंध गया।

"पर अनीता···"

"शहर से कई लोग नित्य जाते हैं। किसीके जाने से कुछ नही होता, पर जाने कभी यह क्या हो जाता है कि···योंही मेरे अन्दर जाने क्या हो रहा है···जैसे सागर आज मुझसे दूसरी बार···" अनीता ने अपने ही दांतों में अपनी जिह्वा काट ली।

इकबाल कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे से कहने लगा, "सागर एक बार जा सकता था, पर दूसरी बार नही जा सकता।"

"क्या मतलब ?" अनीता चौंककर ठिठक गई।

"मेरा मतलब है, सागर जा सकता था, इकबाल नही जा सकता।" इकबाल ने कहा और अपनी तली से अपने माथे को पोंछा, जैसे अपनी बात से वह स्वयं ही घबरा गया हो।

"क्या मतलब ?" अनीता ने फिर कहा।

"मैं कहीं नही जा रहा।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं कहीं नही जा सकता।"

अनीता ने गहरे होते जा रहे अंधेरे मे इकबाल के मुंह की ओर देखा। इस समय अनीता इकबाल का मुह पहचान न सकी। मुह को शायद वह देख भी नही रही थी। वह केवल आवाज़ सुन रही थी और यह आवाज़ थी जिसे सुनने के लिए उसने अपनी आयु के इतने वर्ष लगा दिए थे, "मैं कही नही जा सकता। मैं तुम्हे छोड़कर कही नहीं जा सक[illegible]र आज यह आवाज़ सचमुच इस धरती से आ रही थी।

बारह

अनीता पूरे पांच दिन से दफ्तर नहीं गई थी। ये छुट्टियां उसने एकसाथ नहीं लीं, एक-एक करके ली थीं। रोज़ छुट्टी लेते समय वह सोचती थी कि कल तक उसमें इतनी हिम्मत अवश्य आ जाएगी कि वह काम पर जा सके। पर अगले दिन उसकी शक्ति पहले दिन से भी घट जाती थी। आखिर पांचवें दिन ऊबकर उसने इकबाल को बुलाया और कहा, "मुझे किसी डाक्टर के पास ले चलो इकबाल! मेरी तबीयत मेरे बस से बाहर हुई जाती है।"

"जिस डाक्टर के पास कहो।"

"किसी साइकिएटरिस्ट के पास।"

"क्यों अनीता?"

"मैं अपने-आपको समझना चाहती हूं इकबाल! मेरे पांव कहीं थम नहीं रहे और मेरे सामने रास्ता भी कोई नहीं।"

"पर रास्ता तो स्वयं ही बनाना पड़ता है···अनीता! डाक्टर इसमें क्या करेगा?"

"डाक्टर बाहर से मुझे कुछ बदलकर नहीं दे सकता, पर शायद वह मेरे अन्तर् में कुछ परिवर्तन ला दे। मैं आपने-आपसे घबरा गई हूं···"

"इन दिनों कोई विशेष बात हुई है?"

"विशेष बात तो मेरे जीवन में कभी भी नहीं हुई। पर शायद जो 'कुछ' हुआ नहीं, वही विशेष बन गया है।"

"मैंने सोचा शायद सचदेवजी ने कुछ कहा हो।"

"मेरे और उनमें एक ऐसी खामोशी आ गई है जिसे मैं सोचती हूं कि अब हम दोनों में से कोई भी नहीं तोड़ सकता।"

"पर यह खामोशी अत्यन्त कठिन होगी···"

"खामोशी अपने-आपमें मेरे लिए कठिन नहीं, अपितु जीवन को घसीटना कुछ सरल हो जाता है। पर मैं अपने लिए नहीं सोचती। सोचती हूं कि जिस आदमी को मैं उसका अधिकार नहीं देती, उसकी सुरक्षा में क्यों हूं···और साथ ही···"

"·············"

"अगर मैं रास्ते में न होऊं तो वह आदमी अपना नया जीवन बना सकता है। आखिर वह एक अच्छा कमाऊ आदमी है। अगर मैं अपना कुछ नहीं बना सकी तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं उसका भी कुछ न बनने दूं।···"

"क्या आपके विचार में वह शान्ति को···"

"शान्ति की बात को मैं इस अच्छे आदमी से नहीं जोड़ना चाहती।··· वह शान्ति की बात मुझे कभी-कभी परेशान अवश्य करती है। जब जग रही होती हूं, मैं उस बात को कभी नहीं सोचती, पर सपने में मुझे कभी-कभी उसका बड़ा भयानक रूप दिखाई देता है। अब भी पिछले तीन दिन मुझे उसका विचित्र सपना आता रहा। कभी मैं देखती थी कि वह पानी के गिलास में कुछ घोलकर मुझे बलपूर्वक पिला रही थी, कभी दोनों हाथों से मेरा, सोई पड़ी का गला दबाती थी···कभी···"

"पर शान्ति की उस चेष्टा के पीछे आखिर कोई बात तो होगी?"

"शायद होगी, पर मैं उस बात को सोचना नहीं चाहती। मैं···"

"आपने एक बार इस घर को छोड़ने का निर्णय किया था?"

"किया था, पर जहां जाना था, मुझे उस घर का रास्ता ही न मिला···"

"आप जानती हैं मैं दिल्ली छोड़कर क्यों नहीं गया?"

"क्यों?"

"कि शायद आप फिर कभी उस तरह का निर्णय कर लें···"

"·············"

इकबाल अनीता के कन्धों पर झुका और उसके दायें कान पर गिरी हुई वालों की एक लट को अपने होंठों से छूकर कहने लगा—

"नीता ! मैं चलता हूं। तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा। आयु-भर प्रतीक्षा करूंगा। चाहे आज आ जाना, चाहे कल और चाहे वर्षों बाद। पर जब भी आओ, ऐसे आओ जैसे तुम अपने घर आ रही हो।"

इकबाल चौखट तक पहुंचकर एक मिनट ठिठका और पीछे लौटकर अनीता के हाथ में एक चाबी देकर कहने लगा, "यह तुम्हारे घर की चाबी है, ताकि तुम्हें दरवाज़ा खटखटाते हुए यह न सोचना पड़े कि तुम अपने घर नहीं आई हो।"

तेरह

पल-भर रात अभी रहती थी, जब अनीता की आंख खुल गई। उसका सांस चढ़ा हुआ था। सपने मे वह कई मील चलती रही थी। बिखरी राहों से गुजरती रही थी। उसके थके हुए पैर जैसे अब भी कराह रहे थे।

अनीता को सारे का सारा सपना याद था—उसने हाथ में दो अत्यन्त सुन्दर डिब्बियां पकड़ी हुई थीं जिनको वह अपनी छाती से सटाकर शीघ्रता से चलती जा रही थी। कितनी ही चौड़ी और तंग पगडंडियां उसके पैरों के नीचे से गुज़र गई थीं। कितनी ही बस्तियां पीछे रह गई थीं। कितने ही उजाड़ उसके सामने थे और वह दोनों डिब्बियों को दोनों हाथों में संभालकर बड़ी तत्परता से चल रही थी, जैसे कहीं पहुंचने की उसे जल्दी हो और उन डिब्बियों को खोलकर देखने की बड़ी लालसा हो।…रास्ते में एक मिनट ठिठककर उसने इन डिब्बियों का केवल रंग देखा था। एक डिब्बी पूर्णतया सफेद थी और एक पूर्णतया काली। ये डिब्बियां उसने कहां से ली थी? उसे कुछ ज्ञान न था। इन डिब्बियों मे क्या भरा हुआ था? उसे कुछ पता न था। और इन डिब्बियों को लेकर वह कहां जा रही थी? उसे कुछ मालूम न था। केवल चलते-चलते वह अपने दुपट्टे के छोर से बंधी चाबी को कभी-कभी टटोल लेती थी।

अनीता की आंखों में आंसू भर आए। पर अनीता को यह ज्ञात न हुआ कि ये आंसू शिकवे के थे या शुक्र के थे। क्या वह प्रकृति के सामने शिकायत कर रही थी कि उसके भटकते पैरों को और भटकाने के लिए प्रकृति ने एक नया और छलिया राह क्यों बना दिया था, या कि वह प्रकृति का धन्यवाद कर रही थी कि उसके वर्षों के भटकते हुए पैरों को अन्त में एक दिशा दे दी थी?

सपनेवाली डिब्बियां और सपने को चाबी...
थीं। अनीता ने दुपट्टे के छोर को टटोला। एक चाबी सचमुच छोर से
हुई थी। पर जब उसने अपने हाथों को देखा, उसके हाथ खाली थे
के दोनों हाथों में कोई डिब्बी नहीं थी।

'चाबी तो कल मुझे इकबाल ने दी थी। वही मेरे सपने में आ गई
ीता ने सोचा, 'पर वह डिब्बियां ?' धीरे-धीरे अपने-आप ही अनीता के
से निकला, 'एक सफेद रंग की डिब्बी। एक काले रंग की। एक आशा
रंग, और एक निराशा का...'

अनीता चारपाई से उठी और बिजली जलाकर एक पत्र लिखने लगी:

सागर ! अपने जीवन के राह पर चलते-चलते उस स्थान
पर आ गई हूं, जहां से कई पगडंडियां कई दिशाओं की ओर जाती
हैं। मैं नहीं जानती कि मैं किधर जाऊं। पर तुम्हें मैं एक बात
बताऊं—मुझे लगता है कि सभी पगडंडियां तुम्हारी ओर जाती हैं।
आज किसी एक पगडंडी पर खड़ा कोई मुझे पुकार रहा है। किसी
और पगडंडी से कोई आवाज नहीं आती। इसलिए मैं उस एक
पगडंडी की ओर मुड़ने लगी हूं।

(मैं मजहबी ख्यालों की औरत नहीं। पर सोचती हूं कि हर
इन्सान का कोई मजहब होता है, इसलिए एक आस्था होती है। इसी-
लिए एक ईश्वर होता है। पर मेरे विचार में यह धर्म, यह आस्था,
यह ईश्वर हर किसीका अलग-अलग होता है। इसलिए किसीका धर्म
मेरा धर्म नहीं, किसीकी आस्था मेरी आस्था नहीं, किसीका ईश्वर
मेरा ईश्वर नहीं...। किसीके लिए 'मुहब्बत' धर्म हो सकती है,
'तलाश' आस्था हो सकती है...और एक 'इन्सान' ईश्वर हो सकता
है। और किसीका मुझे ज्ञान नहीं, पर मेरे लिए इसी तरह है। तुम
मेरे ईश्वर हो, तुम्हारी मुहब्बत मेरा धर्म है और तुम्हारी तलाश मेरी
'आस्था'। एक इन्सान की तरह तुम्हारा आकार भी है और मेरे लिए
एक ईश्वर की तरह तुम निराकार भी हो...इसलिए मैं जहां भी ज

रही हूं, तुम सदैव यह समझना कि मैं तुम्हें पाने के लिए जा रही हूं। यह रास्ता चाहे जीवन का हो, चाहे मृत्यु का। सागर, मैं जानती हूं कि आज मेरी यह बात सुनकर तुम कहोगे कि मैंने स्वयं ही तुम्हें गंवाया था। हां, सागर! मैंने अपने हाथों तुम्हें गंवाया था और उस घड़ी को भटकी हुई आज कोसों दूर खड़ी मैं यह भी सोचती हू कि क्या आज इकबाल के लिए मेरी सम्पूर्ण 'हां' तुम्हें एक पल के कहे हुए 'नहीं' की प्रतिक्रिया नही? सम्भव है यही हो। शायद मैं उसी एक घड़ी का ऋण उतार रही हू। शायद आज इसलिए मैं इकबाल को खोना नही चाहती, क्योंकि मैंने तुम्हें खोकर देखा हुआ है। शायद इसीलिए मैं आज उसकी कोई बात नही मोड़ सकती, क्योंकि मैं तुम्हारी बात मोड़ने का दोष किए बैठी हू।

दुनिया के किसी भी आदमी के लिए यह समझना कठिन होगा कि मैं तुम्हे भी प्यार करती हू और इकबाल को भी प्यार करती हूं। पर मुझे इसकी समझ यू आती है—जैसे तुम्हारी मुहब्बत कोई आकाश जैसी वस्तु हो जिसके अस्तित्व को कोई अस्वीकार नही कर सकता, पर जिसके नीचे बसने के लिए ईंटों और मिट्टी का कोई घर बनाना पड़ता है। इकबाल की 'मुहब्बत' उस घर की तरह है जिसकी दीवारों से मुझे आश्रय की आवश्यकता है। एक घर की आवश्यकता को भी कोई इनकार नही कर सकता और इस बात को भी अस्वीकार नही कर सकता कि आकाश सर्वव्यापी होता है। घर के बाहर भी और घर के अन्दर भी।

सागर, यह पत्र लिखते हुए मैं यह भी जानती हू कि मैं तुम्हें यह पत्र कभी डालूंगी नहीं, और तुम इस पत्र को कभी पढ़ोगे नही, पर तो भी मैं तुम्हें यह पत्र लिख रही हूं। मैंने तुम्हे अभी बताया था कि इन्सान की तरह तुम्हारा आकार भी है और मेरे लिए एक ईश्वर की तरह तुम निराकार भी हो। जब कोई ईश्वर के सामने दुआ करता है तो उसे एक विश्वास होता है कि किसी निराकार अस्तित्व ने उसके

पास बैठकर उसकी दुआ को सुन लिया है। मेरा पत्र मेरी दुआ है'''
और इसको लिखते हुए मैं यह सोच रही हूं कि तुमने मेरे पास खड़े
होकर इसे पढ़ लिया है।

—तुम्हारी'''अनीता

तारीख : आठ मई
समय : पहर रात शेष

चाहे अनीता जानती थी कि वह यह पत्र सागर को डाक में नहीं डालेगी, तब भी उसने पत्र के नीचे अपना नाम लिखा, तारीख लिखी, समय लिखा और फिर पत्र को लिफाफे में डाल दिया। लिफाफे पर पता लिखते समय अनीता को हंसी भी आई और रोना भी, 'ईश्वर का कोई पता नहीं होता,' अनीता ने अपना नीचे का होंठ दांतों में काटा और पत्र को फाड़कर छोटे-छोटे टुकड़े कर दिया।

उसके बाद एक छोटा पत्र अनीता ने अपने बच्चे को लिखा और एक छोटा-सा पत्र अपने पति को। बच्चेवाले पत्र में उसने लिखा कि वह जहां भी होगी, सदैव अपने बच्चे की प्रतीक्षा करती रहेगी। उसके जवान होने की प्रतीक्षा करती रहेगी, उसके स्वयं निर्भर होने की प्रतीक्षा करती रहेगी। और उसने अपने पतिवाले पत्र में लिखा—"मुझे आपसे तिल-भर भी शिकायत नहीं। अपितु मुझे इस बात की वेदना है कि मैं आप जैसे अच्छे मनुष्य का मोल न पा सकी। आप चाहें तो कानून की संगली से खींचकर मुझे वापस ला सकते हैं। पर यह सब कुछ खींचना-घसीटना ही होगा, और कुछ नहीं। मैं जहां भी होऊं, अगर आप मुझे मेरे हाल पर वहीं रहने देंगे तो मैं इसे आपके दिल की खूबसूरती समझूंगी। और अगर कभी कभी आप मेरा बच्चा भी मेरे पास भेज दिया करें'''" यह पत्र लिखते हुए अनीता की आंखें डबडबा आई थीं। उससे और कुछ न लिखा गया। उसी तरह अधूरा पत्र उसने मेज पर रख दिया।

प्रातःकाल हो चला था। अनीता ने अपने दफ्तर छुट्टी का प्रार्थनापत्र

लिखा और फिर धैर्यपूर्वक उठकर हाथ-मुह धोने लग गई।

इकबाल के घर की सीढ़ियां चढ़ते हुए जब अनीता ने अपने दुपट्टे के छोर से बंधी हुई चाबी को टटोला तो उसे रात के सपने में देखी हुई डिब्बियां स्मरण हो आईं। अनीता ने अपने रिक्त हाथो की ओर देखा—'डिब्बियां तो न जाने कहा चली गईं। पर उनके रंग मेरे हाथों में लगे हुए हैं।' और अनीता ने जब चाबी से दरवाजे को खोला, वह प्रसन्न भी थी और उदास भी।

चौदह

सूर्य की प्रथम किरणों ने जब आसमान को झकझोरा, अनीता की भी आंख खुल गई। अनीता के शिथिल अंगों में चेतनता की एक झुनझुनी आई और उसने करवट लेकर अपनी दायीं ओर सोए हुए इकबाल को देखा।

किसी राजकुमार के मुख की अनीता ने जितनी भी सिफतें सुनी हुई थीं, वे सब अनीता को इकबाल के मुंह पर दिखाई देने लगीं। होंठ, जिनपर एक प्यास होती है; माथा, जिसपर एक सत्ता होती है ; और सारी आकृति, जिसमें एक सुकुमारता होती है। और इस समय अनीता को लगा कि सोया हुआ इकबाल पूर्णतया किसी कहानी के उस राजकुमार की तरह लगता था, जो किसी जंगल में रास्ता भूलकर, कितने ही दिनों से भूखा और भटका हुआ, एक स्थान पर जंगल के फलों को खाकर और अंजलि से किसी झरने का पानी पीकर किसी वृक्ष की घनी छाया में सो गया हो।

अनीता ने सोए हुए इकबाल की गर्दन में से एक लम्बा सांस भरा और फिर अपनी पांचों उंगलियां उसके घने बालों में डुबो दीं।

"नीति···" इकबाल ने आंखें झपकीं और अनीता के हाथ की उंगलियां अपने होंठों पर रख लीं।

"तुम्हें रात को डर तो नहीं लगा?" इकबाल ने अनीता की उंगलियों को चूमकर पूछा।

"थोड़ा-सा लगा था," अनीता हंस पड़ी और बताने लगी, "इस तरह लगता था कि मैं जहां से भी गुजरती हूं, समाज के समस्त कानून माथे पर तेवर डालकर मेरी ओर देखते हैं, इसलिए सारे लोग भी मेरी ओर इसी तरह देखते हैं···।"

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। तुम जल्दी सो गए थे, मुझे नींद नहीं आती थी।"

"मुझे जगा लेना था।"

"मुझे जब डर लगा था तो मैंने तुम्हारा सोए हुए हाथ पकड़ लिया था। फिर मैं भी धीरे-धीरे सो गई थी।"

"अब कैसे लगता है?"

"बहुत देर हुई मैंने एक बार खलील जिब्रान को पढ़ा था। पर आज इस तरह लगता है कि जो अक्षर मैंने कई वर्ष पूर्व पढ़े थे, आज मुझे उनके अर्थ मालूम हुए हैं।"

"सच।"

"खलील ने कहा था कि मेरी आत्मा अपने ही पके हुए फल से भारी हो गई है। कितना अच्छा हो अगर कोई ऐसा व्यक्ति मेरे पास आ जाए, जिसे बहुत भूख लगी हो, वह भूख का व्रत तोड़ दे, इस फल को खा ले और मुझे इसके भार से हल्का कर दे!"

"अनीता, तुम्हें भी ऐसे लगता था?"

"मैं इसी प्रकार किसीकी प्रतीक्षा किया करती थी। फिर तुम मिल गए। और आज मुझे लगता है कि सचमुच तुम्हें बहुत भूख लगी हुई थी। आज मैं बहुत खुश हूं। बहुत ही खुश हू।"

"मैं सोचा करता था कि मैं अपनी भूख से खूब परिचित था। पर जब मैं तुम्हें मिला, मेरे अन्दर जाने कैसी रिक्तता-सी भर चली और मुझे मालूम हुआ कि मुझे इससे पहले अपनी भूख का अनुभव नहीं था।"

"इकबाल, तुम इतने खुश हो?"

"बहुत खुश हू।"

"मैं तुम्हें एक बात कहू?"

"कहो।"

"मुझे कभी अकेले मत छोड़ना।"

"मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकता नीति! मैंने तुम्हें कहा है। अपितु मुझे तुमसे एक बात पूछनी है।"

"क्या ?"

"तुम कभी इस वात से तो उदास नहीं हो जाओगी कि इतनी कठिनता से तुमने समाज के वन्धन तोड़े, फिर भी तुम्हें सागर न मिला ?"

"सागर को अगर मेरी आवश्यकता होती तो वह मुझे इन राहों पर अकेली न छोड़ जाता। सागर अब मेरे लिए इस तरह हो गया है, जिसपर न मुझे कोई अधिकार है, न उलाहना। मुहव्वत मैं अब भी उसे करती हूं, पर इस तरह नहीं जैसे कोई औरत मर्द को मुहव्वत करती है। वल्कि इस तरह जैसे कोई इन्सान ईश्वर से प्रेम करता है। इकवाल, तुम मुझे समझ रहे हो न ?"

"हां, नीति !"

"मैं अन्दर और वाहर से एक होकर जीना चाहती हूं इकवाल ! मैंने इसलिए समाज के उस वन्धन को तोड़ा कि वहां पर मैं अन्दर से कुछ और जीती थी और वाहर से कुछ और। मैं आंखें वन्द कर कुछ और सोचती थी और आंखें खोलकर कुछ और देखती थी। समाज के इस ढांचे को तोड़ना सरल नहीं होता। मैंने कई वर्ष सोचने में ही विता दिए। फिर अब जो यह सव कुछ कर गुज़री हूं केवल इसलिए कि न मैं किसी और से झूठ वोलूं और न अपने-आपसे।"

"कहे जाओ नीति। सव कुछ कहे जाओ !"

"मुझे केवल यही कहना है कि मैं तुम्हें अर्पित रातों में कोई सपना भी नहीं देखना चाहती जो तुम्हारा न हो।"

इकवाल ने कहा कुछ नहीं, उठकर अनीता का माथा चूम लिया।

"यह सव कुछ मुझे तुम्हारे लिए नहीं करना, अपने लिए करना है इकवाल ! मैं अपनी आत्मा को झूठ के दागों से वचाना चाहती हूं।"

"अभी शायद मैं तुम्हें कुछ दिन अधिक सुख नहीं दे सकूंगा नीति, तुम सदा सुख में पली हुई हो। तुम्हें इस प्रकार के काम करने का स्वभाव नहीं, जैसे तुमने रात को किए थे।"

"रात को ?"

पन्द्रह

खरीदने की वस्तुएं अधिक बड़ी नहीं थीं। छोटी-छोटी थीं, पर कितनी ही थीं। बालों की सूइयां, घड़ी का फीता, बूटों के तस्मे, कमीजों के बटन चायदानी का ढक्कन···अनीता अपने हाथ के बेग में इन वस्तुओं को रखते हुए इकबाल को उस दुकान में टंगी हुई कच्चे सिल्क की नेकटाई दिखला रही थी जबकि उसे लगा कि पीछे से किसीने उसे आवाज़ दी है।

"कौन ? बाली ?" अनीता ने पीछे मुड़कर देखा।

"मुझे दूर से तुम्हारा भ्रम हुआ। मैंने आवाज़ तो दे दी पर डर रहा था कि कहीं कोई और न निकल आए।" रामबाली ने अनीता के पास पहुंचकर कहा।

अनीता हंस पड़ी और कहने लगी, "तुम संसार से उल्टे हो बाली। अब तो मेरे अच्छे परिचित भी मेरे पास से इस तरह जाते हैं जैसे उन्होंने पहले कभी मुझे देखा ही न हो।···अच्छे परिचित भी अभी मेरे पास से मेरे सगे ताऊ की लड़की गुज़री थी। सामने की इमारत को इस प्रकार देखने में व्यस्त हो गई जैसे उसकी ईंटें गिन रही हो···"

"यही तो बात है अनीता ! न मैं तुम्हारे सगे ताऊ का पुत्र हूं और न तुम्हारे अच्छे परिचितों में से···" बाली हंस पड़ा। और फिर इर्द-गिर्द देखते हुए शायद वह यह सोचने लगा कि अनीता के आसपास खड़े हुए लोगों में से इकबाल कौन हो सकता था !

"यह इकबाल···" अनीता ने इकबाल की ओर हाथ किया।

"मैंने इकबाल का नाम तो पहले भी सुन रखा था, पर देखा नहीं था।" बाली ने इकबाल से हाथ मिलाया और फिर हंसकर कहा, "खुशनसीब !"

दुकानें बन्द होने का समय हो गया था। इकबाल ने 'टाई' का विचार छोड़ दिया और दुकान से बाहर आ गया।

"अनीता, अगर किसी दिन आपके पास समय हो तो···"

"आज तुम्हारे शहर में हमारा अन्तिम दिन है वाली !"

"मेरा शहर क्यों ? यह तुम्हारा शहर है, तुम्हारा अपना शहर।"

"नहीं वाली। अब यह मुझे बड़ी बेगानी नज़रों से देखता है।"

"ऐसे ही तुम्हारा ख्याल है अनीता।"

"नहीं वाली।"

"दोस्त सदा दोस्त रहते हैं।"

"यह ठीक है वाली। पर ऐसे दोस्त दुनिया में होते ही कितने हैं···"

"दोस्त एक भी बहुत होता है अनीता! ···पर जैसे तुम्हारी इच्छा, जिस तरह इकबाल की इच्छा···। इस समय आपको बहुत जल्दी है जाने की?"

"अभी हमने जाकर खाना खाना है···फिर कुछ सामान······"

"सामान के लिए सारी रात पड़ी हुई है, मैं साथ चलकर बंधवा दूंगा। खाना मेरे साथ खा लीजिए···क्यों इकबाल ?"

इकबाल मान गया। वाली दोनों को अपने घर ले गया। बहुत छोटा-सा घर था, पर उसके किसी ओर ऊंचा घर नहीं था, इसलिए उसके छोटे-से आंगन में बैठकर सिर पर आकाश का टुकड़ा बड़ा दिखाई देता था। बाहर नीम का एक वृक्ष था। जिसकी कई टहनियां दीवार को फांदकर आंगन में आ गई थीं। इन झुकी हुई टहनियों के नीचे वाली ने कुर्सियां रखीं और आंगन में जलती बत्ती बुझाकर एक कोने में मोमबत्तियां जला दीं।

"कितनी सुन्दर रात है···"

"इसलिए कि आपको यह शहर भी अपना दिखाई दे······"

वाली ने मेज़ पर तीन गिलास रखे और उनमें बर्फ के टुकड़े डालता हुए कहने लगा, "आज हम इस रात को मनाएंगे, ताकि इस शहर पर आपका कोई उलाहना न रहे।"

"तुम कितने अच्छे हो वाली !"

वाली ने मोमबत्तियों की हल्की रोशनी में एक बार अनीता के मुंह की ओर देखा और एक बार इकबाल के मुंह की ओर।

"क्या देख रहे हो ध्यान से ?" अनीता हंस पड़ी।

"देख रहा हूं कि आप दोनों में से अधिक खुश कौन है ?"

"अधिक खुश तो मैं ही हूं। मुझे कभी विश्वास ही नहीं होता था कि मुझे कभी अनीता मिल जाएगी।"

"वास्तव में मैं अधिक खुश हूं। यह तो शाहज़ादों जैसा लड़का है, इसे तो दुनिया में कुछ भी मिल सकता था—मैं···" अनीता ने आगे कुछ न कहा। शायद उसे अपनी पहली मुहब्बत का वह दुखान्त स्मरण हो आया था, जिसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता था।

"जीवन बड़ा अजीब होता है···। कई बार इसकी परतों में से हम जिस रंग को खोजते हैं, वह नहीं निकलता। पर कोई ऐसा रंग निकल आता है जो उससे भी अधिक खूबसूरत होता है।" वाली ने कहा। यह अनीता की उसी बात का उत्तर था, जिसके बारे में अनीता ने कुछ नहीं कहा था। और साथ ही वाली शायद आज की रात के विषय में भी सोच रहा था···कि तो सागर का दोस्त था। सागर के लिए अनीता से भेंट हुई और अनीता के लिए इकबाल से।

वाली के नौकर ने जो कुछ घर में बना हुआ था, उसमें कुछ बाहर से लाकर मिला लिया और मेज़ पर प्लेटें रखने लगा।

वाली ने अन्दरवाले कमरे में जाकर कुछ रिकार्ड लगा दिए, जिनमें एक गीत था :

> आज मैंने आकाश का नारियल तोड़ा है
> याद की सफेद गरी मेरे हाथ में पकड़ी हुई है
> इस नारियल का पानी कौन पिएगा !

अनीता ने मोमबत्तियों की कांपती रोशनी में इकबाल के मुंह की ओर देखा और धीरे से कहा, "चांद की सफेद गरी मेरे हाथ में पकड़ी हुई है। देख रही हूं, तुम्हें कितनी भूख है।"

"चांद की सारी गरी खा लूंगा, तब भी मेरी भूख नहीं मिटेगी।" इकबाल ने कहा ग्रौर ग्रनीता का हाथ ग्रपनी तली पर रख लिया।

ग्रनीता ने इकबाल के मोटे ग्रौर सुर्ख़ होंठों की ग्रोर देखा तो उसे इकबाल की कही हुई एक बात स्मरण हो ग्राई—'मैंने जब जन्म लिया था, मेरी मां बीमार हो गई थी। वह मुझे दूध नहीं दे सकती थी, मेरी बूढ़ी दादी ने मुझे ग्रपनी गोद में ले लिया ग्रौर जाने कैसे उसकी छाती में दूध उतर ग्राया था'''' ग्रौर ग्रनीता सोचने लगी, 'इकबाल के पतले-पतले, चिकने-चिकने ग्रौर लाल-लाल होठ जब दादी की छाती से छुए होंगे तो यह कैसे हो सकता था कि दादी की शुष्क छाती में से दूध की बूंदें न टपक ग्रातीं''''' ग्रौर ग्रनीता सोचने लगी, 'मैं सदा यही सोचा करती थी कि सागर के बग़ैर मेरे जीवन में कोई ग्रादमी नहीं ग्रा सकता। पर इकबाल के होंठों ने जब मुझे छुग्रा, मेरे सूखे होंठों में मुहब्बत भर ग्राई।'''

दीवार की दूसरी ग्रोर चन्द्रमा निकल ग्राया था। उसे शायद दीवार की उस ग्रोर से गीत की ग्रावाज़ ग्राई, बातों की ग्रावाज़ ग्राई ग्रौर वह नीम की टहनी की तरह झुककर ग्रांगन में देखने लगा।

बाली ने मोमबत्तियों की हल्की रोशनी में एक बार अनीता के मुंह की ओर देखा और एक बार इकबाल के मुंह की ओर।

"क्या देख रहे हो ध्यान से ?" अनीता हंस पड़ी।

"देख रहा हूं कि आप दोनों में से अधिक खुश कौन है ?"

"अधिक खुश तो मैं ही हूं। मुझे कभी विश्वास ही नहीं होता था कि मुझे कभी अनीता मिल जाएगी।"

"वास्तव में मैं अधिक खुश हूं। यह तो शाहज़ादों जैसा लड़का है, इसे तो दुनिया में कुछ भी मिल सकता था—मैं···" अनीता ने आगे कुछ न कहा। शायद उसे अपनी पहली मुहब्बत का वह दुखान्त स्मरण हो आया था, जिसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता था।

"जीवन बड़ा अजीब होता है···। कई बार इसकी परतों में से हम जिस रंग को खोजते हैं, वह नहीं निकलता। पर कोई ऐसा रंग निकल आता है जो उससे भी अधिक खूबसूरत होता है।" बाली ने कहा। यह अनीता की उसी बात का उत्तर था, जिसके बारे में अनीता ने कुछ नहीं कहा था। और साथ ही बाली शायद आज की रात के विषय में भी सोच रहा था···कि वह तो सागर का दोस्त था। सागर के लिए अनीता से भेंट हुई और अनीता के लिए इकबाल से।

बाली के नौकर ने जो कुछ घर में बना हुआ था, उसमें कुछ बाहर से लाकर मिला लिया और मेज़ पर प्लेटें रखने लगा।

बाली ने अन्दरवाले कमरे में जाकर कुछ रिकार्ड लगा दिए, जिनमें एक गीत था :

> आज मैंने आकाश का नारियल तोड़ा है
> याद की सफेद गरी मेरे हाथ में पकड़ी हुई है
> इस नारियल का पानी कौन पिएगा !

अनीता ने मोमबत्तियों की कांपती रोशनी में इकबाल के मुंह की ओर देखा और धीरे से कहा, "चांद की सफेद गरी मेरे हाथ में पकड़ी हुई है। देख रही हूं, तुम्हें कितनी भूख है।"

"चांद की सारी गरी खा लूंगा, तब भी मेरी भूख नहीं मिटेगी।" इकबाल ने कहा और अनीता का हाथ अपनी तली पर रख लिया।

अनीता ने इकबाल के मोटे और सुर्ख होंठों की ओर देखा तो उसे इकबाल की कही हुई एक बात स्मरण हो आई—"मैंने जब जन्म लिया था, मेरी मां बीमार हो गई थी। वह मुझे दूध नहीं दे सकती थी, मेरी बूढ़ी दादी ने मुझे अपनी गोद में ले लिया और जाने कैसे उसकी छाती में दूध उतर आया था···' और अनीता सोचने लगी, 'इकबाल के पतले-पतले, चिकने-चिकने और लाल-लाल होंठ जब दादी की छाती में छुए होंगे तो यह कैसे हो सकता था कि दादी की शुष्क छाती में से दूध की बूंदें न टपक आतीं···' और अनीता सोचने लगी, 'मैं सदा यही सोचा करती थी कि सागर के बगैर मेरे जीवन में कोई आदमी नहीं आ सकता। पर इकबाल के होंठों ने जब मुझे छुआ, मेरे सूखे होंठों में मुहब्बत भर आई।···'

दीवार की दूसरी ओर चन्द्रमा निकल आया था। उसे शायद दीवार की उस ओर से गीत की आवाज आई, बातों की आवाज आई और वह नीम की टहनी की तरह झुककर आंगन में देखने लगा।

सोलह

नया शहर था, नया घर था और घर के सभी काम नये थे। इकबाल और अनीता कमरे की वस्तुओं को पहले एक स्थान पर रखते, फिर वह न जंचती तो उसे दूसरे स्थान पर रखते। गिनती की चीज़ें थीं, वे चाहे उनको किसी भी तरह धर-पकड़ करते, वह सभी आवश्यकताओं के लिए पूरी न उतरतीं। और जो वस्तुएं जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी थीं, वे इकबाल को पसन्द नहीं थीं।

"चल नीति! आज नये प्याले ले आएं।" एक दिन चाय पीते हुए इकबाल ने कहा।

"प्याले तो अभी हमारे पास बहुत हैं।"

"इन प्यालों से मेरा दिल भर गया है···और एक बार जब किसी से मेरा दिल भर जाता है, मैं उससे काम चलाने के लिए उसके साथ एक क्षण भी नहीं काट सकता।"

अनीता ने चौंककर इकबाल की ओर देखा, फिर हंस पड़ी और कहने लगी, "आज शाम को नये प्याले ले आएंगे। पर यह शाही रुचि केवल प्लेटें-प्यालियों, कुर्सियों और मेज़ों पर ही लागू होती है न?···मेरा मतलब है निर्जीव वस्तुओं पर।···सजीव वस्तुओं पर तो यह रुचि लागू नहीं होती?"

इकबाल भी हंस पड़ा और कहने लगा, "न जाने नीति, मेरे अन्दर क्या होता है, पहले तो मुझे कोई वस्तु पसन्द ही नहीं आती और अगर एक बार पसन्द आ जाए तो मैं उसे लिए बिना रह नहीं सकता। और जब मैं इसे ले लूं, थोड़े दिनों बाद वह मेरी पसन्द की नहीं रहती।"

"पर मैंने यह पूछा था कि यह तबीयत केवल निर्जीव वस्तुओं पर ही

लागू होती है या सजीव वस्तुओं पर भी ?"

"आज तक तो मुझे जिन वस्तुओं का तजरबा हुआ है, या तो मेज होती है, या पर्दे, या पलंग, या रेडियो। और या फिर मेरी नौकरी···मुझे याद है, मैं जब पढ़ता था, एक चित्रकार की बहुत ही सराहना किया करता था। उसका काम देखा करता था और सोचता था, कभी यह आदमी मुझे अपने ब्रुश धोने के लिए ही अपने पास रख ले।"

"फिर ?"

"जब मैंने पढ़ाई पूरी कर ली तो ऐसा अवसर हुआ कि उस आदमी ने मुझे अपने पास नौकरी दे दी। मैंने कठिनता से तीन महीने काटे थे कि मेरा दिल भर गया। मैं सोचने लगा कि मैं अपना अलग स्टूडियो बनाकर उससे अच्छा काम कर सकता हूं।"

"फिर इकबाल ?"

"वहां से नौकरी छोड़ी, और उससे ड्योढ़े पैसों पर मुझे एक और नौकरी मिल गई; पर वहां भी मैं केवल चार महीने काट पाया। यह लाहौर की बात है। मैं सोचने लगा कि यह शहर बहुत छोटा है। बाद में देश का बंटवारा हो गया। दिल्ली मुझे पहले ही खींचा करती थी, मैं दिल्ली चला आया।"

"फिर ?"

"अत्यन्त कठिन दिन देखे। रहने के लिए कोई स्थान न था, खाने के लिए रोटी न थी।"

"नौकरी कोई न मिली ?"

"एक मिली थी, पर मैंने पांच महीनों के बाद छोड़ दी थी। मुझे लगता था कि मैं जिस कोटि का काम करता था, उस कोटि के मुझे पैसे नहीं मिलते थे। क्यों नीति, मैं बहुत हठी हूं न ? पर मैं तुम्हें एक बात बताऊं कि आदमी जब एक वस्तु से सन्तुष्ट हो जाता है, वह उन्नति नहीं कर सकता।"

"हां, ठीक है।"

"स्कूल में भी जब पढ़ता था, अपने मास्टर से उलझ पड़ता। वे मुझे अपना स्टाइल सिखाते थे, और मैं वह सीखता नहीं था। अगर मैं वह सीख लेता तो मैं सदा के लिए उसकी कारबन-कापी बन जाता। क्यों ठीक नहीं ?"

"ठीक है।"

"बड़े ब्रुशों से काम करने के लिए मेरा मन करता था। इसलिए फिर मैं सिनेमा में 'बैनर' बनाने लगा।"

"फिर ?"

"वहां भी मुझे यह लगा कि उस काम के लिए जितनी मेहनत करनी पड़ती थी, उतने पैसे नहीं मिलते थे। मैं बम्बई के एक आर्टिस्ट का काम देखा करता था तो मेरी आंखों में एक सपना भर जाता था, इसलिए मैं दिल्ली छोड़कर बम्बई चला गया। तीन महीने मैंने उसके साथ मिलकर काम किया, और मेरा सपना टूट गया।"

"फिर ?"

"फिर मैं स्वतन्त्र रहकर काम करने लगा। फुटों के हिसाब से जहां काम करता था, पैसे ले लेता था। फिर एक इश्तिहारों की कम्पनी थी। उस कम्पनी ने मेरा काम देखा तो मुझे अपने दफ्तर में सबसे बड़ी नौकरी दे दी।"

"फिर ?"

"वहां न जाने कैसे मैंने दो वर्ष काट लिए। फिर नौकरी के बन्धन से मैं तंग आ गया और बम्बई छोड़कर दिल्ली चला आया।"

"फिर ?"

"फिर आगे तुम जानती ही हो। मैंने अपना स्टूडियो बनाया था और अपनी रुचि का काम करता था।"

"पर मेरी बात का उत्तर तो अभी भी नहीं दिया। ये बातें तो हुईं वस्तुओं के विषय में, शहरों के विषय में, नौकरियों के विषय में, ये सभी वस्तुएं निर्जीव हैं।"

"सजीव वस्तु तुमसे पहले कोई पसन्द ही नहीं आई।" इकबाल हंस पड़ा।

"फिर इस सजीव वस्तु पर ईश्वर दया करे!" अनीता भी हंस पड़ी।

इकबाल और अनीता शाम को उस बाजार में गए, जिस बाजार में सबसे बढ़िया चीनी के बर्तन मिलते थे। क्या बड़ी दुकान और क्या छोटी, उन्होंने एक-एक दुकान ढूंढ मारी। सस्ती वस्तुएं भी थीं, महंगी भी, और अत्यधिक महंगी भी। पर मूल्य का प्रश्न नहीं था। इकबाल उन बर्तनों में इस प्रकार की बनावट और इस प्रकार का रंग ढूंढता था, जो देखने में नितान्त नया हो।

आखिर एक दुकान पर जब इकबाल ने चौकोने प्याले पसन्द किए तो एक प्याले को हाथ में पकड़कर देखते हुए अनीता के मुंह से निकल गया, "मान गई हूं, तुम्हारी पसन्द को इकबाल!"

"मान गई हो न?"

"हां···"

"और यह मेरी पसन्द?" इकबाल ने अनीता की ओर संकेत किया।

"इस मामले में शायद तुमसे मेरी पसन्द अधिक अच्छी हो।" अनीता ने इकबाल की बांह को हाथ लगाते हुए कहा।

"वह कैसे?"

"तुम शायद कभी अपनी पसन्द पर पछताने लगो। पर मैं कभी नहीं पछताऊंगी···"

"तुम आज मेरी सवेरे की बातें सुनकर डर गई हो?"

"नहीं।"

अनीता ने इस समय इकबाल को 'नहीं' कह दिया था। अपनी ओर से सच ही कहा था···पर घर आकर, रोटी खाकर और नये मोल लिए प्यालों में चाय पीकर अनीता जब सोने लगी तो उसे लगा कि उसके अन्तर् में, किसी जगह, किसी तरह का कोई डर लग रहा था।

इकबाल को सदैव अनीता से पहले नींद आ जाया करती थी। वह

रोटी खाकर अभी सोने के कपड़े पहनता ही था कि उसकी आंखें आप ही मुंद जाती थीं। आज भी जब अनीता अभी जाग ही रही थी, इकबाल सो चुका था। अनीता ने सोए हुए इकबाल के मुंह की ओर देखा। खिड़की में से आती हवा बहुत तीखी थी। जिससे सिर के बालों की एक लट इकबाल के माथे पर हिल रही थी। अनीता को एक क्षण ऐसे ही लगा कि किसी पक्षी के पंखों की तरह, इकबाल के बाल, सिरहाने से उड़ने को ही थे।

अनीता ने अपने कांपते हाथ को सहारा देने के लिए इकबाल के सिर पर हाथ रखा। बालों के पंख अनीता की तली के नीचे आ गए। अनीता कितनी ही देर उनको सहलाती रही। इकबाल सोया हुआ था, पर अनीता को लगता रहा कि उसकी काली घनी जुल्फ़ें जग रही थीं। अनीता कितनी देर उनसे खेलती रही।

कितनी देर बाद जब अनीता को लगा कि उसका मन स्थिर हो गया या उसने इकबाल के माथे से अपना हाथ उठा लिया। पर करवट लेकर अनीता जब सोने लगी तो उसे फिर लगा कि उसके अन्तर् में, किसी जगह, किसी तरह का कोई डर लग रहा था। अनीता ने बड़े ध्यान से अपने अन्तर् को देखा, उसके 'आज' को कोई डर नहीं लग रहा था, वह अपने स्थान पर स्थिर खड़ा हुआ था। पर उससे थोड़ी ही दूर खड़ा हुआ उसका 'कल' भय से कांप रहा था।

सकती थी। पैसा कभी भी अनीता का सपना नहीं बना था, पर आज नीता के दिल में इतने पैसों के लिए सम्मान अवश्य जगा, जितने से वह इकबाल को स्वतन्त्रता मोल लेकर दे सकती हो।

"अगर इकबाल, हम कुछ दिन इस शहर की भीड़ में से और इस काम की भीड़ में से अपने-आपको निकाल सकें..."

"पर यह किस तरह हो?"

"मेरे पास लगभग इतने पैसे पड़े हुए हैं कि अगर हम बहुत समय नहीं तो एक महीने के लिए किसी पहाड़ पर जा सकते हैं।"

"पर नीति! मैं तुम्हारा पैसा खर्च नहीं करना चाहता।"

"इस स्वाभिमान को निभाने के लिए सारी दुनिया पड़ी हुई है इकबाल! पर तुम और मुझमें इतना अन्तराल ही कहां है कि यह स्वाभिमान..."

"नीति!"

"ये तुम्हारे सारे दिन और सारी रातें मेरे लिए होंगी।"

"तुम अजीब चीज़ हो नीति! तुम्हारे साथ तो बातें करके ही थकान उतर जाती है। मेरा सपना यही है कि किसी दिन हमारे पास इतने पैसे हो जाएंगे जिससे गुज़ारे की चिन्ता न रहेगी। फिर हम किसी पहाड़ी गांव में ज़मीन ले लेंगे। हम एक छोटा-सा घर बनाएंगे, जो ऊंचे-ऊंचे वृक्षों से घिरा हुआ होगा..."

"हम दोनों ही एक प्रकार के हैं, शायद यह हमारे लिए अच्छी बात नहीं। मेरा इससे बड़ा सपना और कोई नहीं कि किसी पहाड़ी नदी के किनारे हम बहुत-सी ज़मीन ले लें। कहीं बगीचा लगा लें, कहीं हल जोत लें...लकड़ी का या पत्थर का एक छोटा-सा घर बना लें...शायद ये बातें बहुत रोमांटिक हैं..."

"पर मैं सोचता हूं कि मुझे वह स्त्री कदापि नहीं चाहिए थी जो इस प्रकार की बातें न कर सकती। मेरे सपने जिस ओर भी जाते हैं, तुम मिनटों में उनके पैर-चिह्न ढूंढ़ लेती हो..."

उस रात, अगला दिन और अगली रात, मनीता और इकबाल के सपने कल्पना के विस्तृत जंगलों में घूमते रहे। कबूतरों की तरह गुटकते रहे, और हरिणों की तरह चौकड़ी भरते रहे।

"फिर धीरे-धीरे मैं बूढ़ा हो जाऊंगा। किसी वृक्ष की छाया में एक चारपाई डालकर बैठा रहूंगा। तुम मेरा हुक्का भरकर मेरी चारपाई के पास रख दिया करना···"

"हुक्का?"

"जब हम शहरी जीवन को छोड़ देंगे, मैं सिगरेट पीना भी छोड़ दूंगा।"

इकबाल ने इन छत्तीस घण्टों में कभी इस आयु की बातें कीं, जब वह जवान कदमों से मनीता के साथ मिलकर पहाड़ी गांवों में घूमता, पहाड़ी घाटियां और पहाड़ी लड़कियों को कागजों पर उतार रहा होता, और कभी उस आयु की बातें, जब वह बूढ़े और कांपते हाथों से हुक्के की आग को हिलाता, मनीता के बूढ़े और कांपते हुए हाथों की ओर देखकर मुस्करा रहा होता।···इन छत्तीस घण्टों में मनीता और इकबाल ने यह सपने देखे, जिनकी आयु कम से कम छत्तीस वर्ष की थी। इनमें स्वतन्त्र अभ्यास में पली हुई इकबाल की कला की बातें थीं, बड़े वर्षों के मान से मनीता की हंसती मुहब्बत की बातें थीं और जवान रहिम के घर जन्म लेनेवाले नन्हे-नन्हे बच्चों की बातें थीं···

छत्तीस घण्टे व्यतीत हो गए। इकबाल प्रातः का गया हुआ जब संध्या को लौटा, उसके साथ मेजों और कुर्सियों से भरा हुआ एक ठेला था। इकबाल ने सामान उतरवाया और जब ठेलेवाले को पैसे देकर भेज दिया तो मनीता ने हैरान होकर पूछा, "यह क्या है?"

"मैंने आज एक कम्पनी बनाई है।"

"कम्पनी?"

"हम पांच-छः आर्टिस्ट मिलकर काम करेंगे, इस तरह काम अधिक निपट सकेगा। वे लोग लगातार घण्टों परिश्रम कर सकते हैं, पर उनमें

कुछ 'नया' नहीं डाल सकते। मैं थोड़े-से मिनटों में उन्हें 'ख्याल' बता दिया करूंगा, बाकी मेहनत वे कर लिया करेंगे। इस तरह महीने में हम इतना काम निकाल सकेंगे कि…"

इकबाल ने बात करते-करते जब अनीता के मुंह की ओर देखा तो उसका उत्साह थम गया। और उसके मुंह से निकला, "यह बात तुम्हें जंची नहीं नीति ?"

अनीता हंस पड़ी और कहने लगी, "अगर तुम्हें जंचती है तो ठीक ही होगी।"

"मुझे तो ठीक जंचती है। मैं तभी यह करने लगा हूं। उन लोगों को शिकायत है कि वे कई-कई घण्टे काम करते हैं, उनसे कोई नई वस्तु नहीं बनती। चाहे उनका काम अच्छा बिक जाता है। और मुझे यह शिकायत है कि जिस नयेपन के बिना वे असन्तुष्ट रहते हैं, मैं मिनटों में सोच लेता हूं। पर उसपर जो परिश्रम मेरे स्थान पर कोई भी कर सकता है, मुझे उसके लिए बहुत समय व्यर्थ गंवाना पड़ता है।"

"आजमा लेने में कोई हानि नहीं।"

"हमारे पास दो कमरे हैं, एक हम रहने के लिए रख लेंगे, एक काम करने के लिए। अभी कोई अलग स्थान नहीं लेंगे, ताकि कम्पनी पर शुरू में ही अधिक खर्च न पड़ जाए।"

"सारे लोग एक ही कमरे में बैठेंगे ?"

"खिड़की की ओर मैं अपनी बड़ी मेज़ रख लूंगा, तीनों कोनों में तीन व्यक्ति छोटी मेजें रख लेंगे। लम्बी दीवार के साथ पांचवीं मेज़ रख लेंगे।"

"अच्छा।"

"तुम अच्छा तो कह रही हो नीति, पर तुम मुझे उत्साह नहीं दे रही हो।"

"मैं सोचती हूं कि मैं तुम्हारे इस काम पर अपनी सलाह का भार न डालूं।"

"क्या तुम सोचती हो, मै सफल नही होऊंगा ?"

"शायद कुछ दिन ठीक ही लगेगा।"

"पर यह बहुत दिन नही चलेगा ?"

मनीता कुछ कहने लगी थी, पर फिर उसके शब्द भिभक गए।

"पर तुम शायद इसीलिए सोच रही हो कि तुम्हारा पहाड़ पर जाने का मन है और यह तुम जानती हो कि अगर मैंने यह कम्पनी बना ली तो मैं एक दिन के लिए भी इस शहर से बाहर नही जा सकूंगा।..."

"मैं अपने लिए कुछ नही सोच रही हूं इकबाल !"

"पहाड़ों पर ज़मीन लेनी और घर बनाना तो बुढ़ापे की बातें हैं नीति ! मैं अभी शहरों मे रहकर कुछ बनना चाहता हू। मैं इस जवानी की उमर में ही बूढा नही हो जाना चाहता..."

"इकबाल...!"

"मैं यह कम्पनी अवश्य चलाऊंगा।"

"मैंने कोई आपत्ति नही की।"

"फिर तुम खुश क्यों नही हो ?"

"मैं तुम्हें शायद तुमसे भी अधिक जानने लगी हूं।"

"और तुम क्या सोच रही हो कि मैं यह नही कर सकूंगा ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"इस तरह आमदनी अवश्य बढ़ जाएगी। पर केवल आमदनी का बढ़ना तुम्हें तसल्ली नही दे सकता इकबाल।"

"पर मैं अपनी इच्छा का काम करूंगा नीति।"

"जो काम तुम्हें पसन्द न हो, उसके लिए अगर तुम अकेले ही जिम्मेवार हो तो इनकार कर सकते हो। पर तुम एक कम्पनी की ओर से इनकार नही कर सकते, क्योंकि उसकी हानि केवल तुम्हे नहीं होगी, सभीको होगी..."

"यह ठीक है कि अगर मैं किसी काम को इनकार कर दूगा तो बाकी

लोग आपत्ति करेंगे…"

"फिर इच्छा कहां रह जाएगी ?…इसके अतिरिक्त जिस कल्पना का तुम अपने मन में चित्र बनाओगे, उसे कागज़ पर उतारने के लिए भी तुम्हें स्वयं ही परिश्रम करना पड़ेगा। अन्य किसीका हाथ तुम्हारी कल्पना को नहीं पकड़ पाएगा…और जब तुम उनको बार-बार समझाओगे, तो खीझ उठोगे…"

"तुमने मुझे संशय में डाल दिया अनीता।"

"मैं इसीलिए कुछ कह नहीं रही थी।"

"पर अब तो मैं उन लोगों का सामान भी उठा लाया हूं।"

"कुछ लिखा-पढ़ी भी हुई है ?"

"अभी नहीं, क्योंकि हम सबने सोचा था कि महीने-भर के लिए… यह देख लें कि इस कार्य में से सबका खर्च भी निकल सकता है या नहीं।"

"फिर एक महीना देखने में कोई हानि नहीं।"

दूसरा दिन व्यतीत हुआ, तीसरा दिन भी गया, चौथे दिन दोपहर का समय था जब इकबाल अनीता के कमरे में आया। इकबाल का मुख इतन उतरा हुआ था कि अनीता के हाथों से अखबार छूट गया।

"मैं इस कमरे में केवल इसलिए आया हूं कि मैं उस कमरे में बैठ नहं पाया।"

"क्यों इकबाल ?"

"जिस कमरे में कोई और बैठा हुआ हो, मैं उस कमरे में बैठकर कुछ नहीं सोच सकता। वहां तो चार जने बैठे हुए हैं। मैंने प्रातः से कुछ का नहीं किया। और न मैं कर सकता हूं। या वे मेरे कमरे से चले जाएं, य मैं कहीं चला जाऊंगा…"

"चलो, एक महीने की बात है…"

"एक महीने की ? मैं एक दिन नहीं काट सकता…और तुम ठी कहती थीं।"

"फिर कल उन्हें किसी तरह समझा देना, नर्मी से।"

"कल ?···कल नहीं आज···अभी···"

इकबाल ने उसी समय अपने साथियों को अपने मन की बात कह डाली।

किसीने कोई आपत्ति न की। केवल यह कहा कि इकबाल अपने खर्च पर सबका सामान यथास्थान पहुंचा दे; और इकबाल ने रात पड़ने से पहले-पहले उन सबके मेज, कुर्सियां और कागज जब वापस पहुंचा दिए तो अपने कमरे में खड़ा होकर कहने लगा, "अब मुझे भाग आने लगा है, नहीं तो इस कमरे में मेरा सांस घुटने लगा था।"मैं किसीके साथ मिलकर काम नहीं कर सकता।"

"इस प्रकार तुम कलाकार न रहते, एक कम्पनी के मालिक बन जाते।"

यह छोटी-सी घटना, यह छोटा-सा तजरबा, कोई विशेष बात नहीं थी। पर दूसरे दिन अनीता जब दर्पण के सामने खड़ी होकर बाल संवार रही थी तो उसे लगा कि उसकी आंखें कुछ गहरी उतर गई थीं। जैसे बाहर की ओर देखने की जगह कहीं अन्दर की ओर देख रही थी···अपने अन्तर् में सरक रहे किसी भय की ओर···

अठारह

अगस्त में रश्मि का पत्र आया था, और अब सितम्बर आ गया था। एक महीना हो चला था पत्र आए। पर यह अरसा कैलेण्डर की गिनती के अनुसार था, अनीता को अपने मन की गिनती के अनुसार लगता था कि रश्मि का पत्र आए कम से कम एक वर्ष हो गया था।

रश्मि अनीता की छोटी से छोटी बात भी मानता था। वह अपने पत्र में अपनी बातें बड़े विस्तार से लिखता था—कि आज आगे कौन-सी पुस्तक कहां तक पढ़ ली थी, पिछले सप्ताह उसका वजन कितना था। आज होस्टल में कौन-सी नई शरारत हुई थी। कई बार वह नये सुने हुए या नये पढ़े हुए चुटकले भी लिख भेजता था और अनीता उसकी सब छोटी-छोटी बातों से उसके मन की गहराई खोजती रहती थी और चाहे पिछले पत्र में रश्मि ने लिखा था कि वह अगला पत्र देरी से लिखेगा, क्योंकि आजकल उसे स्कूल की तिमाही परीक्षा देनी थी, तो भी आजकल अनीता को लगता था कि रश्मि ने पत्र लिखने में आवश्यकता से अधिक देरी कर दी थी।

अनीता और इकबाल जिस बड़ी इमारत में रहते थे, उस इमारत में समेत उनके अठारह परिवार रहते थे। अठारह छोटे-छोटे परिवारों की उस इमारत में छः घर नीचे बने हुए थे और छः पहली छत पर और छः दूसरी छत पर। रास्ता इस भांति का बना हुआ था कि जब तक किसी घर का पीछे का दरवाज़ा पूरा खुला न होता, बाहर से आवाज़ किसीके अन्दर नहीं जाती थी। तीन-तीन घरों की पीठों के बीच में एक रास्ता बना हुआ था। घरों के माथे तीस-तीस फुट चौड़े दालानों में खुलते थे।

अनीता का एक पांव घर के पीछे के दरवाज़े की ओर होता और एक पांव आगे के दरवाज़े की ओर। कभी वह पीछेके दरवाज़े के पास ठहरकर

ग्राहट लेती कि ग्रभी डाकिया ग्रा रहा था। ग्रौर कभी वह ग्रागे के बरामदे में खड़ी होकर बाहर के बड़े दालान की ग्रोर देखती रहती कि ग्रभी एक खाकी वर्दीवाला यहां से गुज़रेगा ग्रौर उसे रश्मि का पत्र दे जाएगा। कुछ मिनट ग्रनीता जब पीछे के दरवाज़े के पास खड़ी रहती तो वह उतावली हो जाती कि वह ग्रागे के दरवाज़े की ग्रोर जाए। शायद डाकिये ने ग्रब तक बरामदे की जाली में से पत्र ग्रन्दर डाल दिया हो। ग्रौर फिर कुछ मिनट जब ग्रागे ग्राकर ठहरती, सामने खुले दालान में कोई दिखाई न देता तो वह पीछे के दरवाज़े की ग्रोर जाने के लिए ग्रातुर हो उठती। शायद डाकिये ने ग्रब तक पीछे के दरवाज़े की नीचे की दरार में से पत्र ग्रन्दर खिसका दिया हो।

तीन-तीन घण्टे के बाद डाक ग्राती थी। ग्रगर ग्रधिक नहीं तो हर तीन घण्टे के बाद एक घण्टा ग्रवश्य ग्रनीता की ग्राशा बनी रहती थी। इसके ग्रतिरिक्त एक ग्रलग ग्राशा उसे बनी रहती थी कि शायद रश्मि ने ग्रपना पत्र इस बार 'ऐक्सप्रेस' डाक में भेजा हो, जो किसी भी समय ग्रा सकता था। किसी भी समय!

इकबाल जो चित्र ग्रपनी इच्छा के ग्रनुसार बनाना चाहता था, उन्हें बनाने के लिए यह ग्रावश्यक था कि वह कुछ समय के लिए उन्हें भूल जाए ग्रौर जो कुछ लोग कहते हैं, वह चुप रहकर उन्हें ही बनाता जाए। यह चाहे मुंह पर मलनेवाली किसी क्रीम का इश्तिहार हो, चाहे 'ग्रधिक ग्रनाज उपजाग्रो' का सरकारी सन्देश ग्रौर चाहे किसी विदेशी किस्म की ग्रर्ध-नग्न सुन्दरी जैसी सीता। ये सारी वस्तुएं इकबाल को पैसे देती थीं, जिनको खर्च करके ग्रौर बचाकर वह निकट भविष्य में ग्रपने मन की वस्तुएं बना सकता था।

यह सब इकबाल ने सोचा हुग्रा था। दिन का ग्रधिक समय वह इसी प्रकार के काम ही करता था। तो भी नित्यप्रति या दूसरे दिन वह कुछ समय ग्रपने एक उस चित्र में लगाता था, जो एक दिन रात को ग्रनायास उसने ग्रारम्भ कर दिया था। उसमें उसकी कल्पना विचित्र रंग भर रही थी।

अनीता का कहना था कि यह चित्र इकवाल की कला को जव अपने अंगों में संभाल लेगा, इकवाल का माथा स्वाभिमान से ऊंचा हो जाएगा।

आज अनीता ने अपने घर के आगे के और पीछे के दरवाज़े के पास खड़ी होकर रश्मि के पत्र की प्रतीक्षा की, तो मन को वहलाने के लिए वह धीरे से इकवाल के कमरे का दरवाज़ा खोलकर उसके पास आ बैठी।

इकवाल ने पिछले कुछ घण्टों में अपने ब्रुश को जाने कितनी वार एक रंग में डुवोया था और फिर पानी के प्याले में धोकर दूसरे रंग में। प्याले का पानी वहुत गंदला गया था। अनीता ने धीरे से प्याला उठाया और उसे धोकर नया पानी भर लाई। इकवाल के प्याले का पानी अनीता जव भी वदलती थी, एक अजीव पवित्रता का अहसास उसे होता। वह जव भी रंगों की शीशियों के ढक्कन खोलती थी, और जव भी विखरे हुए ब्रुशों को धोकर रखती थी या प्याले का पानी वदलती थी तो उसके मन में पूजा की सामग्री को हाथ लगाने का सा आभास होता। और उसे अपना-आप सार्थक होता दिखाई देता था···आज भी ऐसे ही हुआ। अनीता को सव कुछ अच्छा लगा। केवल एक छोटी-सी रिक्तता उसके अन्दर थी···अगर कहीं इस समय रश्मि हाथ में वस्ता पकड़े दौड़ता हुआ उसकी वांहों में आ जाए···!

इकवाल को कुछ पता नहीं, किस समय अनीता ने प्याला उसके पास से उठाया, किस समय साफ किया और किस समय फिर उसके पास रख दिया। उसने जव चित्र से आंखें उठाकर अनीता की ओर देखा, पल-भर के लिए उसने जैसे अनीता को पहचाना न हो। चित्र की—और कल्पना की लड़की का अत्यन्त सुन्दर चित्र कमरे में इस तरह विद्यमान था—जिसकी एक ओर इकवाल की आखें थीं और दूसरी ओर अनीता का मुंह !

फिर कुछ संभलकर इकवाल ने अनीता को अपनी वांहों में ले लिया। हाथों का, वांहों का और होंठों का यह मेल, इकवाल और अनीता को लगता था कि सदैव नया शिखर छूता था। यह मेल एक अचम्भा होता था।

तन का साज वही होता था, मन के स्वर भी वही होते थे, पर हर बार उनके कानों में कोई नया गीत सुनाई देता था।···आज भी ऐसे ही हुआ। इकबाल और अनीता को अपना मेल एक अचम्भा लगा, पर आज का गीत जाने किस राग में था। पर आज का अचम्भा जाने कैसा था। इकबाल की बाहें और कस गई। अनीता की बांहे और जकड़ गई। दोनों के अन्तर् में कहीं एक-एक गहराई थी, एक-एक गढा, एक-एक खाई। और दोनों एक-दूसरे से अपनी-अपनी खाई को भर लेना चाहते थे।

उन्नीस

अंधेरा डूबते सूर्य की लाली को घूंट-घूंट पी रहा था। समुन्दर के किनारे पर खड़े हुए इकबाल के पैर अपने ही भार से किनारे की गीली रेत में धंस रहे थे। इकबाल काफी समय से ध्यानपूर्वक पानी की लहरों की ओर देख रहा था, शायद उन लहरों को अपने दिल में उठती लहरों से माप रहा था।

"इकबाल !" पास खड़ी हुई अनीता ने धीरे से इकबाल की बांह को छुआ।

"हां, नीति !"

"अभी चलना नहीं ?"

"कहां ?"

'घर।'—अनीता कहने लगी थी पर उसने कहा नहीं, 'यह भी भला कहने की बात है !' अनीता ने सोचा, 'यह तो इकबाल जानता ही है। घर ही तो जाना है और कहां जाना है ?'

"मनुष्य का मन कैसा होता है नीति ?" इकबाल ने चुप की चुप अनीता को धीरे से पूछा।

अनीता ने क्षण-क्षण गहरे होते जा रहे अंधेरे में इकबाल के मुंह की ओर देखा। इकबाल की आंखें सूखी थीं, पर उन सूखी आंखों में एक बादल भरा हुआ था। ऐसे लग रहा था कि अभी यह बादल बरस पड़ेगा और इकबाल की आंखें पानी-पानी हो जाएंगी।

होंठों को जब शब्द नहीं मिलते, तो अपने मन की बात बताने के लिए या पूछने के लिए अंगों में एक हरकत आ जाती है। इस हरकत के पास एक अपनी ज़बान होती है, जिससे दो परस्पर प्रेम करनेवाले व्यक्ति आपस में

बहुत बातें कर सकते हैं। अनीता ने इसी गूंगी जबान का आश्रय लिया और इकबाल के हाथ को अपने दोनों हाथों में पकड़ लिया।

"तुम्हें तो बुखार हो रहा है इकबाल!" अनीता ने पहले इकबाल की तली को छुआ, फिर बांहों को और फिर माथे को।

"शायद···" इकबाल ने कहा।

आगे न कुछ अनीता को कहने की आवश्यकता पड़ी, न इकबाल को। दोनों घर की ओर लौट पड़े।

"मैं खाऊंगा कुछ नहीं। केवल मेरा बिछौना कर दो। मेरा सारा शरीर टूट रहा है।" घर पहुंचकर इकबाल ने कहा।

"चाय का एक प्याला भी नहीं?" अनीता ने शीघ्रता से बिछौना किया और पूछा।

जितनी देर में इकबाल ने सोने के कपड़े पहने, अनीता ने चाय बना ली और इकबाल को चाय पिलाती हुई पूछने लगी, "किसी डाक्टर को बुला लाऊं?"

"इस समय नहीं। सवेरे सही। शायद सवेरे तक आप ही ठीक हो जाऊंगा।"

अनीता ने हल्के-हल्के इकबाल का माथा दबाया और वह सो गया।

अनीता अपनी चारपाई पर लेट गई। पर उसके विचार उन्हीं पैरों खड़े रहे—

'इकबाल बहुत उदास है।'

'शायद उसे पैसों की कुछ चिन्ता है?'

'शायद उसके पिताजी ने उसे एक कड़वा पत्र लिखा है?'

'शायद सचदेव ने किसी कानूनी कार्रवाई का भय दिया है?'

अनीता का मन आया कि वह सोए हुए इकबाल को जगा ले और उसकी उदासी को बांटकर उसे हल्का कर दे।

'यह बुखार और कुछ नहीं। केवल उसके मन पर जो भार पड़ा हुआ है, उसीसे उसका शरीर टूट रहा है।' अनीता ने करवट बदली और

इकबाल को जगाने के लिए उसके कन्धे पर हाथ रखा।

'अगर एक बार उसकी नींद उचट गई तो फिर शायद वह सो न सके...' अनीता को विचार आया और उसने अपना हाथ इकबाल के कन्धे से उठा लिया।

'रात में सोते हुए बुखार उतर जाएगा और प्रातः काल मैं उसके साथ इतनी खुश बातें करूंगी...' अनीता अपने मन को समझाने लगी।

तब भी अनीता सोने से पहले रह न सकी। उसने धीरे से उठकर सो रहे इकबाल की गर्दन पर अपने दोनों होंठ रख दिए, जैसे वह अपने दोनों होंठों से इकबाल की सारी उदासी को चूस लेना चाहती हो।

प्रातः उठकर जब अनीता ने इकबाल के माथे पर हाथ रखा, माथा रात से भी अधिक गर्म था। अनीता घबराकर एक डाक्टर को बुला लाई।

डाक्टर ने अच्छी तरह देखा, परखा और कहने लगा, "अभी मैं इस बुखार के विषय में कुछ नहीं कह सकता। हल्की-सी एक दवाई दूंगा। आप कोई भारी वस्तु खाने को मत देना। केवल दूध, बारेल और फलों का रस देते जाना। चार-चार घण्टों के बाद बुखार देखती जाना। कल-परसों तक कुछ मालूम हो सकेगा।"

जिस तरह डाक्टर ने कहा था, अनीता ने उसी प्रकार किया। केवल अपने मन की सान्त्वना के लिए उसने दुपहर के समय इकबाल से पूछा—

"पिताजी का कोई पत्र आया है?"

"नहीं।"

"कोई सचदेव का पत्र?"

"बिलकुल नहीं।"

अनीता कुछ निश्चिन्त हो गई। पर और अधिक तसल्ली के लिए उसने एक बार फिर इकबाल से पूछा, "इकबाल, तुम्हारे मन में यह भय तो नहीं कि सचदेव कोई कानूनी झगड़ा डाल देंगे?"

"मेरा विचार है कि सचदेव साधारण लोगों से बहुत अच्छा है। वह

इस प्रकार सोचेगा कि अगर किसीका मन न जीता जा सके तो तन को घसीटने से कुछ नहीं बनता। इसलिए वह बिलकुल चुप रहेगा।"

अनीता को इकबाल का यह उत्तर सुनकर एक ओर बड़ी तसल्ली हुई। पर दूसरी ओर उसकी विचारधारा और भटक गई, 'फिर इकबाल किस बात के कारण उदास था?' पर अनीता ने और कुछ न पूछा। उसे भय था कि बहुत बोलने से इकबाल का बुखार न बढ़ जाए।

बुखार दूसरे दिन भी उसी तरह रहा, तीसरे दिन भी उसी तरह। चौथे दिन डाक्टर ने कहा कि यह बुखार मियादी बुखार लगता है।

एक दिन गर्म पानी में तौलिया भिगोकर अनीता इकबाल का शरीर पोंछ रही थी तो इकबाल ने अचानक अनीता का हाथ पकड़ लिया और कांपती आवाज़ में कहा, "नीति! तुम मेरे लिए इतने दुःख क्यों झेल रही हो?"

"दुःख?" अनीता ने कहा और इकबाल की नंगी पीठ को चूम लिया।

"तुम्हें मेरे शरीर से बुखार को गन्ध नहीं आती?"

"नहीं।"

"तुम्हें कोई सुख देने के स्थान पर मैं स्वयं ही बीमार हो गया हूं। तुम रात में जग-जगकर मुझे दवाई देती हो···तुम्हें तो दिन में सारा समय भटकना पड़ता है—कभी डाक्टर के पास जाना, कभी दूध गर्म करना, कभी पानी उबालना, कभी मेरे कपड़े धोना···"

"पर इकबाल! तुम यह नहीं सोचते कि ये सारे अधिकार केवल मुझे मिले हुए हैं, और किसीको नहीं।"

"तुम मुझे इतना प्यार क्यों नहीं करती हो?" इकबाल ने कहा, पर उसके ये सारे शब्द आंसुओं में भीगे हुए थे।

अनीता ने इकबाल को कपड़े पहनाए और फिर उसके बिस्तर की चादर बदलते हुए कहा, "औरत जब किसीको प्यार करती है तो पूरा प्यार करती है। फिर वह अपने पास कुछ नहीं रखती।"

"और मर्द?"

"मैं क्या जानूं। वह तुम जानो।"

इकबाल कुछ देर चुप रहा, पर फिर अनीता का हाथ पकड़कर कहने लगा, "मर्द की प्रकृति औरत जैसी क्यों नहीं होती?"

अनीता इकबाल के मुंह की ओर देखने लगी। फिर तनिक झुककर पूछने लगी, "तुम मुझे प्यार नहीं करते इकबाल?"

इकबाल ने आंखें बन्द कर लीं। बन्द आंखों में से थोड़ा-सा पानी बहकर उसके कानों तक आ गया।

अनीता खड़ी न रह सकी। वह चारपाई को पकड़कर पैरों के भार नीचे बैठ गई, और इकबाल के तकिये पर सिर रखकर कहने लगी, "तुममें और मुझमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं आ सकता इकबाल? मैं सत्य को खोजने के लिए तुम्हारे पास आई हूं। मुझे सब कुछ सत्य बता दो।"

"मैं तुमसे कभी भी झूठ नहीं बोला नीति। तुम ऐसी औरत हो, जिससे झूठ नहीं बोला जा सकता।" इकबाल ने बुखार से तप रहा हाथ अनीता के सिर पर रख दिया।

"फिर?"

"तुम मुझे समझ लोगी? वैसे इस दुनियां में अगर कोई मुझे समझ सकता है तो केवल तुम्हीं समझ सकती हो।"

"तो फिर मेरी समझ पर भरोसा कर लो।"

"नीति!" इकबाल ने एक लम्बा सांस लेकर कहा, "यह भी सच है कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं, पर यह भी सच है कि मैं तुम्हें पूरा प्यार नहीं करता।"

अनीता ने तकिये से सिर उठाया, पर उसके सिर को एक चक्कर आया। स्वयं ही उसका सिर फिर से तकिये पर रखा गया।

"मैं सोच नहीं सकता था कि एक दिन तुम मुझे मिल जाओगी। यह मुझे बहुत बड़ी बात लगती थी। पर अब जब तुम सचमुच मुझे मिल गई हो···" इकबाल की आवाज़ टूट गई।

"अब कैसे लगता है?" अनीता के मुंह से निकला। अनीता की

आवाज में कोई रोष नहीं था। केवल उसकी आवाज इस तरह थी, जैसे वह अत्यन्त थकी हुई हो।

"अब मैं आंखें बन्द कर अपनी कल्पना में किसी और को सोचता रहता हूं।"

"किसे ?"

"जिस लड़की को मैंने आज तक कहीं देखा नहीं। मालूम नहीं, वह इस दुनिया में है भी अथवा नहीं। पर एक अत्यन्त सुन्दर और जवान लड़की मुझे अपनी कल्पना में दिखाई देती रहती है।"

"मैं तुम्हें कहा करती थी इकबाल कि मैं तुमसे आयु में बड़ी हूं, इसलिए तुम्हारी जवानी की प्यास नहीं बुझेगी।"

"तुम शायद ठीक कहती थीं, पर मैं उस समय समझ न पाया था।"

"पर तुम उदास क्यों होते हो इकबाल ? अभी तुम्हारे पास बहुत उमर बाकी है। तुम्हें अवश्य अपनी मुराद मिल जाएगी।"

"पर तुम्हारा क्या होगा ?"

"मेरा ? ···मेरा कुछ नहीं।"

"मैंने तुमसे घर छुटवाया, नौकरी छुटवाई, बच्चा छुटवाया···"

"बच्चे को छोड़ इस दुनिया में कोई भी वस्तु मेरी नहीं थी। बच्चा अब भी जीवित है, और उसे मेरी आवश्यकता हुई तो मुझे मिल जाएगा।"

"तुम मुझसे गुस्से नहीं हो ?"

"नहीं !"

"पर मैं अपने-आपसे गुस्से हूं।"

"इसीलिए तुम्हें बुखार चढ़ा हुआ है।"

अनीता के अन्दर जाने कहां से शक्ति आई। उसने इकबाल के सिरहाने पड़ी हुई दवाइयों की सारी शीशियां उठाकर एक ओर रख दीं और मुंह-हाथ धोकर अपने कपड़े बदलने लगी।

"नीति !" इकबाल ने पुकारा।

"हां।"

"कहां चली हो ?"

"किसी और बड़े डाक्टर को बुलाने के लिए।"

"क्यों ?"

"मेरा विचार है कि तुम्हें मियादी ज्वर नहीं। यह डाक्टर गलत दवाइयां दे रहा है।"

नये डाक्टर ने जब आकर इकबाल को देखातोविश्वासपूर्वक कहा कि यह मियादी ज्वर नहीं था। वैसे खून को भी उसने परखकर देख लियाथा।

"फिर यह क्या है डाक्टर ?" अनीता ने पूछा।

"किसी ग्लैण्ड में थोड़ी-सी सूजन आ गई है।"

"अगर कोई बहुत चिन्ता करें, तो भी यह सूजन हो जाती है ?"

"हो सकती है।"

डाक्टर की दवाई से दूसरे दिन बुखार कम हो गया और तीसरे दिन उतर गया।

इकबाल बहुत कमजोर हो गया था। डाक्टर और अनीता को आशा थी कि इकबाल की कमजोरी थोड़े दिनों में ही जाती रहेगी। डाक्टर ने ताकत की दवाएं भी दीं, पर इकबाल का स्वास्थ्य न सुधरा। यूं उसे अब ज्वर नहीं होता था।

पिछले कई दिनों से अनीता ने इकबाल से उसकी स्वास्थ्य की बात को छोड़, दूसरी कोई बात नहीं की थी। पर इकबाल को इस भांति उदास का उदास और कमजोर का कमजोर देखकर अन्त में एक दिन अनीता ने कहा—

"इकबाल ! डाक्टर ने जो करना था, कर दिया। इससे अधिक कोई डाक्टर कुछ नहीं कर सकता। अब तुम अपना स्वास्थ्य स्वयं ही ठीक कर सकते हो।"

"यह मैं समझता हूं नीति ! पर···"

"जो कुछ तुम्हारे मन में आता है, कह दो।"

"मेरे मन में गुनाह का अहसास आता है···"

"यह किसी तरह टूट सकता है ?"

"शायद टूट सकता है, मगर मैं अकेला रहता होऊं। पर जब मैं तुम्हारे मुख की ओर देखता हूं, मेरा यह अहसास बढ़ जाता है।"

"फिर जैसे तुम कहो..."

"मैं क्या कहूं ! कुछ कहने के लिए मेरे पास जबान ही नहीं..."

"............"

"मेरी किस्मत में न जाने कैसी भटकन लिखी हुई है। तुम्हें छोड़कर मैं दूसरी जवान लड़कियों को पाऊंगा, मुझे शायद उनमें तुम्हारे जैसा दिल नहीं मिलने का, फिर मैं तुम्हारे लिए भटकूंगा...मुझे शायद कभी भी चैन नहीं आ सकता—तुम्हारे साथ, न किसी और के साथ..."

"............"

"पर तुम कहां जाओगी नीति ?"

"कहीं भी।"

"अगर तुम्हारे पास रहने के लिए कोई और स्थान न हो तो, यहीं रहे जाओ।"

"नहीं इकबाल, यह नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"मैं तुम्हारे पास तुम्हारी आवश्यकता के बिना नहीं रह सकती। मैं किसीके पास भी उसकी आवश्यकता के बिना नहीं रह सकती।"

"फिर ?"

"इतना मैं जानती हूं, अधिक मुझे कुछ मालूम नहीं।"

"तुम सागर के पास चली जाओ। वह शायद मुझसे अच्छा मनुष्य होगा।"

अनीता का वह सब्र, जो बहुत दिनों से मन की सारी पीड़ाओं के ऊपर एक पुल की तरह पड़ा हुआ था, एकबारगी टूट गया और अनीता अपने मन के गहरे पानियों में डूबने-उतराने लगी। डूबती की केवल एक आवाज निकली, "ईश्वर के लिए इकबाल, मुझे कुछ न कहो। मैं चली जाऊंगी। कहीं भी चली जाऊंगी।"

बीस

गाड़ी से उतरकर अनीता उस शहर के प्लेटफार्म पर ठहर गई, जिस शहर में उसका बच्चा रहता था। शहर के शरीर पर हजारों मकान इस तरह उगे हुए थे, जिस तरह छोटे-छोटे रोम हों। और अनीता ने सोचा—इस शहर की आंखें भी होंगी, जो उसकी ओर अत्यन्त जलती नजरों से देखेंगी; और उस शहर की ज़बान भी होगी, जो उसके साथ जाने कितना कड़वा बोलेगी। पर अनीता को लगा कि उसे न इस शहर की क्रोधित आंखों का फिक्र था, न इस शहर की लम्बी ज़बान का। वह केवल इस शहर की नब्ज़ को हाथ लगाकर देखना चाहती थी, जिसके कारण यह शहर जी रहा था। यह नब्ज़ अनीता का बच्चा था। अगर यह नब्ज़ धड़क रही थी तो अनीता के लिए यह शहर जीवित था। अगर यह शहर जीवित था तो भले ही वह कड़वी ज़बान से बोले, और भले ही वह जलती आंखों से देखे।

एक-एक करके अनीता ने इस शहर में अपने परिचित लोगों के नाम सोचे, पर किसी भी नाम से उसके पैरों में शक्ति न आई, न ही किसी होटल में जाने का विचार उसे अच्छा लगा। अनीता अपने विचारों को लटकाना नहीं चाहती थी, उसे मालूम था कि अगर कहीं उसके विचार उसके हाथ में से एक बार निकल गए तो फिर वह न जाने किन खाइयों में उतरती जाएगी। अनीता जानती थी कि उसके मन में उदासी की बहुत गहरी खाइयां थीं। वह जान-बूझकर उन खाइयों की ओर नहीं देख रही थी। और अनीता जानती थी कि वह कोई बहादुर औरत नहीं थी। वह खाइयों से डर रही थी, इसीलिए वह खाइयों की ओर पीठ फेरकर खड़ी हुई थी।

और अनीता रामवाली के घर की ओर चल पड़ी। चाहे अनीता वाली

पर अपना कोई इस प्रकार का अधिकार नहीं समझती थी कि उसने पूछे बिना कुछ दिनों के लिए उसके घर का आश्रय ले लेगी, पर अनीता को दो विचार आए। एक तो यह कि वाली सागर को भी जानता था और इकबाल को भी, इसलिए नये सिरे से उसे कुछ भी दोहराने की आवश्यकता नहीं थी, और दूसरी बात यह थी कि वाली की मां अपने गांव में रहती थी, और वाली के घर किसी स्त्री ने अपने प्रश्नों से अनीता को परेशान नहीं करना था। अनीता जानती थी कि उसके समाज में हर स्त्री को घुट-घुटकर मर जाना तो आता है पर सांस लेने के लिए किसी भी दरवाज़े या खिड़की को खोल देना नहीं आता। इसलिए ऐसी अवस्था में अगर किसी उस जैसी स्त्री के साथ किसीको सबसे कम सहानुभूति होती है तो उसकी अपनी जाति की होती है।

"अनीता बहन!" वाली ने जब दरवाज़ा खोला तो अनीता को देखकर वह हैरान हो गया।

"मैं अन्दर आ जाऊं?"

वाली अनीता को देखकर हैरान भी था, खुश भी था। शायद इसी-लिए उसने अनीता के स्वर के संकोच की ओर ध्यान न दिया और अनीता के कन्धे पर हाथ रखकर एक बार फिर दुहराया, "अनीता बहन!"

अन्दर आकर बैठी अनीता ने चाय पीते हुए वाली से पूछा, "मैं यहां तुम्हारे घर कुछ दिन रह सकती हूं वाली?"

"दीवाली कल गुज़र गई है। पर मुझे लगता है जैसे आज भी दीवाली है। मैं अभी चाय पीकर दीए भी जलाऊंगा और पटाखे भी चलाऊंगा।" वाली ने उत्तर दिया।

अनीता नहीं चाहती थी, पर इस उत्तर से अनीता की आंखों में बरबस पानी आ गया। अनीता की आंखों की ओर देखकर वाली के हाथ में पकड़ी हुई चाय छलक गई। और उसके मुंह से निकला, "अनीता! तुम खुश नहीं हो। इकबाल कहां है?"

"मैं उदास लग रही हूं?" अनीता के होंठ आंसुओं में भिगो होकर

हंसने लगी।

वाली हैरान होकर अनीता के मुंह की ओर देखने लगा।

अनीता ने फिर कहा, "वास्तव में मेरे सिर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है। शायद सफर के कारण..."

"इकवाल तुम्हारे साथ क्यों नहीं आया?"

"नहीं आया।"

"अगर सिर में बहुत पीड़ा है तो बिस्तर करवा दूं?"

"करवा दो।"

अभी तक अनीता यही सोच रही थी कि लम्बे रास्ते की धूल से उसका सिर भारी हो गया था, पर बिस्तर पर बैठते ही अनीता को लगा कि उसके सिर की विचार-शृंखलाएं उसके सिर की नाड़ियों को दोनों हाथों से ज़ोर से खींच रही थीं।

"अगर बहुत तकलीफ है तो किसी डाक्टर को बुलाऊं?" वाली ने पूछा

"सोने से ठीक हो जाऊंगी। मुझे कोई डाक्टर नहीं चाहिए।"

खाना अभी बना नहीं था। वाली ने रसोई में जाकर देखा। एक ी बन चुकी थी। वाली ने नौकर से एक प्लेट में सब्ज़ी डलवाई और डबलरोटी के दो टुकड़े रखकर अनीता के पास ले आया।

"फिर मैं तुम्हें सोते से नहीं जगाऊंगा, अनीता। यह थोड़ी-सी रोटी खा लो।"

अनीता को भूख नहीं थी। पर अनीता अपने मन को भरमाने के लिए रोटी खा ली। और फिर सो गई।

वाली जब प्रातः उठा तो अनीता अभी सोई हुई थी। वाली ने धीरे से अनीता के पास जाकर उसके माथे पर हाथ रखा और फिर तसल्ली से उठकर एक ओर चला गया। अनीता को बुखार नहीं था।

और भी कितना ही समय व्यतीत हो गया। अनीता अभी भी सोई हुई थी। वाली ने चाय बनवाई और अनीता को जगाने के लिए जब उसके पास आया, अनीता के सिरहाने पड़े हुए एक कागज़ पर उसकी दृष्टि पड़ी

बाली को अनीता ने कुछ नहीं बताया था, पर तब भी रात से बाली सहमा हुआ था। उसने जल्दी से कागज पढ़ा, जिसपर अंग्रेजी में लिखा हुआ था—

"ड्रिंक योर कप अलोन, दो इट टेस्ट्स एज़ योर ओन ब्लड एँड टियर्स; एँड प्रेज़ लाइफ फॉर द गिफ्ट ऑफ़ थर्स्ट। फॉर विदाउट थर्स्ट योर हार्ट इज बट द शोर ऑफ ए बेरन सी, सौंगलेस एँड विदाउट ए टाइड।"[1]

बाली का दिल धड़कने लगा। कागज के पास कलम भी पड़ी हुई थी। स्पष्ट था कि ये पंक्तियां अनीता ने रात को किसी समय उठकर लिखी थी। और बाली चिन्ता में पड़ गया कि अनीता ने रात को ये पंक्तियां क्यों लिखी थी?

फिर एकबारगी बाली का माथा ठनका। उसे ऐसे लगा कि रात में अनीता ने कोई ऐसी वस्तु खा ली थी जिससे वह अपने जीवन से खेल गई थी। उसके मुंह से एक भयातुर आवाज निकली, "अनीता!"

अनीता ने चौंककर आंखें खोलीं।

"शुक्र है तुम जीवित हो!"

"क्या हुआ बाली?"

"मुझे डर लगा था···"

"तुम्हें रात में कोई दु:स्वप्न आया था?"

पहले तो बाली को अनीता के इस प्रश्न पर हंसी आई, पर फिर उसे अनीता का लिखा हुआ वह कागज याद आया और उसका मुख गम्भीर हो गया।

"तुमने क्या सोचा था?" अनीता ही ने फिर पूछा।

"मैंने सोचा था कि शायद तुमने रात को कोई वस्तु खा ली है।"

---

१. "अपना प्याला अकेले ही पियो, भले ही इसमें तुम्हारे अपने रक्त और आंसुओं का स्वाद हो; और, धन्यवाद दो उस जीवन को जिसने तुम्हें पिपासा का वरदान दिया। क्योंकि पिपासा के बिना तुम्हारा हृदय एक छूछे सागर जैसा ही है—संगीतहीन और ज्वार भाटा के चढ़ाव-उतार से शून्य!"

"रात में तो बस मैंने वही सब्ज़ी खाई थी, जो तुम प्लेट में डालकर लाए थे।"

"शुक्र है, तुम हंस रही हो।"

"तो तुमने क्या सोचा था कि मैंने रात में जहर खा लिया ?"

"मैं डर गया था···"

"नहीं बाली, अगर मुझे जहर ही खाना होता तो रात में तुम्हारे घर न आती। तुम्हें क्या मैंने राह जाते मुसीबत में डालना था ?"

"पर अनीता···"

"बताओ, क्या पूछते हो ?"

"रात को उठकर तुम यह क्या लिखती रही हो ?"

अनीता ने कागज़ की ओर देखा और मुस्करा पड़ी।

"यह हंसने की बात है ?"

"हां, हंसने की और खुश होने की, कि जिन्दगी ने मुझे प्यास की सौगात दी है। देखो तो मैंने इस कागज़ पर क्या लिखा है—प्रेज़ लाइफ़ फ़ॉर द गिफ़्ट ऑफ़ थर्स्ट।"[1]

"और यह जो लिखा हुआ है—ड्रिंक यौर कप अलोन, दो इट टेस्ट्स एज़ यौर ओन ब्लड ऐंड टियर्स।"[2]

"यह भी सच है।"

"यह समय आ गया है अनीता ?"

अनीता ने कहा कुछ नहीं केवल बाली के मुंह की ओर देखा। बाली को लगा कि अनीता की आंखों में उसकी दृष्टि अस्थिर होती जा रही थी।

"अनीता, तुम्हें क्या होता जा रहा है ?"

"मेरे सिर में कुछ हो रहा है।"

"क्या ?"

---

१. धन्यवाद दो उस जीवन को, जिसने तुम्हें पिपासा का वरदान दिया।

२. अपना प्याला अकेले ही पियो, भले ही इसमें तुम्हारे अपने रक्त और आंसुओं का स्वाद हो।

"बड़े ज़ोर से कोई मेरी नाड़ियों को खींचकर तोड़ रहा है।"

"तुम बैठो नहीं मनीता, लेट जाओ। मैं किसी डाक्टर को बुलाता हूं।"

"डाक्टर को नहीं बाली, मगर तुम बुला सकते हो तो रश्मि को बुला दो।"

"रश्मि को?"

"किसी तरह…"

"मैं उसे भी ले आऊंगा मनीता! तुम घबराओ मत। पहले डाक्टर को ले आऊं।"

"डाक्टर को बाद में बुला लेना। पहले रश्मि को बुला दो एक बार…"

मनीता स्वयं भी नहीं जानती थी कि उसे क्या होता जा रहा है। अन्दर कहीं उसके सिर में झटके लग रहे थे। थोड़ा रुककर, मनीता ने अपने स्वर को सन्तुलित किया और फिर थामे हुए बाली को अपने पास बिठाकर कहा—

"मेरी एक बात सुनो बाली।"

"बताओ।"

"अगर मैं मर गई तो…"

"तुम्हें क्या हुआ है, मनीता?"

"हुआ मुझे कुछ नहीं। यूं मैं तुम्हें एक बात कह रही हूं…"

"मैं नहीं सुनता कोई ऐसी बात।"

"नहीं, यह अत्यन्त आवश्यक बात है। तुम अभी मगर सुन लो और याद भी रखना।"

"…………"

"अगर कभी तुम्हें इकबाल मिले…"

"इकबाल?…कहां गया है इकबाल?"

"कहीं नहीं गया।"

"फिर ?"

"शायद उससे कभी मेरा मेल न हो। मैं इसीलिए तुम्हें कह रही हूं···"

"पर तुम्हारा मेल क्यों न होगा अनीता ?"

"तुम चुप क्यों नहीं रहते वाली ? मेरी बात क्यों नहीं सुनते ? बस तुम उसे इतना कह देना कि मैं उससे रुष्ट नहीं हूं।"

"अनीता !"

"मैं सच कहती हूं वाली। अगर कहीं मुझे इस दुनिया में इकवाल न मिलता तो मुझे मानव-प्राप्ति का शिखर ही ज्ञात न हो पाता। मैं कल्पना की दुनिया में जीती और मर जाती।"

"पर अनीता ! ···"

"पर कुछ नहीं वाली। उसने जितने भी दिन अपनी ज़िन्दगी के मुझे दिए, केवल उन दिनों की बात करो।"

"और ज़िन्दगी के बाकी दिन ?"

"तुम समझते नहीं वाली। तुम उसपर इतना भार क्यों डालना चाहते ?"

"तुमने उसके लिए···"

"मैंने उसके लिए कुछ भी नहीं किया था। सब कुछ अपने लिए किया था। इसीलिए मुझे उसपर कोई रोष नहीं।"

फिर अनीता को पता न चला कि किस समय वाली उसके पास से उठकर चला गया। उसे केवल इतना मालूम हुआ कि उसका सिर तकिये की रुई की तरह हो गया था जिसे कोई ज़ोर-ज़ोर से धुन रहा हो।

इक्कीस

रामयाली को लौटने में बहुत देर हो गई थी। हर स्थान पर उसने बड़े तेज कदम उठाए थे। यहां तक कि एक स्थान पर वह टैक्सीवाले को पाच रुपये का नोट देकर बाकी पैसे लेना भूल गया था। एक स्थान पर अंगूर लिए थे और फिर अंगूरों के लिफाफे को लिए बिना ही वह आगे चल दिया था और अब जल्दी में ही बाहर की दहलीज से टकराकर उसके पैर में चोट आ गई थी।···फिर भी अनीता के सिरहाने खड़े होते हुए उसे लगा कि उसे लौटने में बड़ी देर हो गई थी।

अनीता ने तकिये से सिर उठाकर बैठने का यत्न किया पर उसके सिर का भार-बोझ उसकी गर्दन पर टिक नहीं रहा था और उसने फिर अपना सिर तकिये पर रख लिया।

"तुम बहुत उदास हो अनीता।" वाली ने चारपाई के पास एक ऊंचे मोढ़े पर बैठते हुए कहा।

"उदासी क्या चीज होती है वाली ? केवल खुशी जब रूठ जाती है, हम सब लोग उसका नाम उदासी रख देते हैं।" अनीता के होंठों पर मुस्कान जैसा कुछ आया, और फिर अनीता ने बाहर के दरवाजे की ओर देखते हुए कहा—

"रश्मि ?"

"अभी आता है···"

"सच ?"

वाली को कुछ स्मरण हो आया और वह मोढ़े से उठकर एक अलमारी में कुछ कागज टटोलने लगा।

"तुम्हें एक पत्र दिखाऊं अनीता ?"

"किसका पत्र ?"

"मेरा पत्र ! एक दिन मैंने तुम्हें पत्र लिखा था, पर फिर डाक में नहीं डाला था। बहुत देर की बात है, पिछले वर्ष की।"

"पत्र लिखा था तो फिर डाला क्यों नहीं ?"

"सोचता था कि तुम बहुत खुश होगी, तुम्हें कोई उदास पत्र न लिखूं।"

"तुमने क्या लिखा था पत्र में ?"

बाली ने एक तह किया हुआ कागज़ निकाला और अनीता को थमा दिया। अनीता ने बहुत ध्यान लगाया, पर उसका ध्यान अक्षरों पर टिकता नहीं था। उसने कागज़ बाली को लौटा दिया और कहा, "पढ़कर सुना दो।"

"जिस दिन मैंने यह पत्र लिखा था, जाने क्यों एक घनी उदासी मेरे अन्दर फिरती जा रही थी, भले ही मैं अपने-आपको बार-बार स्मरण दिलाता था कि तुम आजकल बड़ी खुश हो।"

"मैं सचमुच बड़ी खुश रही हूं बाली। पर तुम मुझे सुनाओ, तुमने क्या लिखा था ?"

बाली ने कागज़ की ओर देखा, "एक समुद्र लहरों से पागल हो रहा है। उसमें एक छोटी-सी नौका चल निकली है। तुम इस नौका में बैठ गई हो। मैं रेत पर खड़ा कह रहा हूं—अच्छा ! किनारे जा लगना। हे ईश्वर ! हे ईश्वर ! ···मेरे भीतर में एक भय उठ रहा है। इस भय की छाया तुम्हारी खुशी से रोशन भी है, पर इसके कोने कौए के पंखों के समान काले हैं। जाने यह कैसी अजीब बात है !"

वेग से अनीता के अश्रु बह चले और उसने बाली का हाथ पकड़कर कहा, "तुम कितने अच्छे हो बाली !"

बाहर के दरवाज़े पर आहट हुई। अनीता ने चौंककर दरवाज़े की ओर देखा, "रश्मि ?"

"मेरे विचार में डाक्टर होगा।"

बाली उठकर जब बाहर के दरवाज़े में गया तो वहीं से आवाज़ देकर

कहने लगा, "अनीता ! तुम्हारा रश्मि आ गया ! देखो कितना बड़ा हो गया है तुम्हारा रश्मि !"

"रश्मि ?" अनीता के मुंह से निकली हुई आवाज़ ऐसी थी जैसे धरती की छाती को फाड़कर निकली हो।

जिस उत्साह से अनीता चारपाई से उठी, उसी उत्साह के धक्के से वह फिर चारपाई पर गिर पड़ी।

"मम्मी !" चारपाई पर बायीं ओर बैठकर रश्मि ने अपना सिर अनीता की छाती पर रख दिया।

अनीता की छाती में एक फूल खिला और फिर उसकी सुगन्धि से अनीता के सारे प्राण महक उठे।

बाहर का दरवाज़ा फिर हिला। इस बार डाक्टर आया था। डाक्टर ने जब अन्दर आकर अनीता और रश्मि की लिपटी हुई बांहों को हिलाया तो अनीता के मुंह की ओर देखकर डाक्टर को लगा कि उससे कोई अपराध हो गया था।

डाक्टर ने देखा, परखा, बार-बार जांचा और रामवाली को एक ओर ले जाकर कहने लगा, "आपने मुझे बुलाने में बहुत देर कर दी। यह 'हैमरेज' का केस है।"

"अस्पताल ले चलें ?" वाली ने घबराकर कहा।

"अब तक तो मरीज़ के होश-हवाश सम्भले हुए हैं, कुछ मिनटों बाद नहीं रहेंगे। अस्पताल ले चलो, पर मुझे लगता है कि रास्ते में ही···"

रामवाली ने घबराकर आंखें बन्द कर लीं।

"मेरा ख्याल है कि मरीज़ के सिर की नाड़ी जब फटी थी, तब एक पहर रात बाकी रही होगी।"

रामवाली को साथ लेकर डाक्टर जब अनीता की चारपाई के पास आया, अनीता उस समय अपनी चारपाई के पास खड़े रश्मि की ओर इस प्रकार एकटक देख रही थी, जैसे उसकी दृष्टि में नितान्त अचम्भा हो।

"तुम आ गए ?" अनीता के मुंह से निकली हुई हल्की-सी आवाज़

सबको सुनाई दी।

अनीता फिर कुछ समय रश्मि के मुंह की ओर एकटक देखती रही और देखते-देखते उसके होंठों पर एक अत्यन्त सुन्दर मुस्कान आ गई। मुस्कान में भीगे हुए अनीता के होंठ फिर एक बार हिले, "मैं कितनी भाग्यशाली हूं···तुम दोनों मुझे मिल गए। तुम भी और रश्मि भी···"

रामवाली ने डरकर अनीता की बांह हिलाई और रश्मि की ओर हाथ का संकेत करके पूछा, "यह कौन है अनीता ?"

अनीता ने एक विचित्र दृष्टि से वाली की ओर देखा और जैसे कह रही हो, 'तुम्हें मेरे सौभाग्य पर विश्वास क्यों नहीं आता ?'

वाली ने फिर अनीता की बांह हिलाई और रश्मि की ओर संकेत करके पूछा, "इसे पहचानती हो अनीता ? यह कौन है ?"

"पहचानती क्यों नहीं···यह सागर···"

अनीता के सारे माथे पर मृत्यु का पसीना आ गया। पसीने के गोल-गोल बिन्दु गोल-गोल अक्षरों की तरह थे। अगर इस दुनिया को इन अक्षरों की पहचान होती तो वह पढ़ सकती थी कि अनीता के माथे पर मृत्यु के पसीने ने लिखा हुआ था—'जब तक किसी उस औरत को, जिसे सच्चाई की तलाश है, उसका बच्चा और उसका महबूब, दोनों चीजें नहीं मिल जातीं, उसका हशर हमेशा अनीता की तरह होगा।'

○ ○ ○

आशा है, यह उपन्यास आपको रुचिकर लगा होगा। इसके बारे में हम आपके बहुमूल्य विचारों का स्वागत करेंगे। राजपाल एण्ड सन्ज़ का सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्कृष्ट प्रकाशनों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया जाए; और यह सब आपके हार्दिक सहयोग पर ही निर्भर है। यदि आप कथा-साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हैं तो हमारा उत्कृष्ट उपन्यास-साहित्य मंगवाकर पढ़िए अथवा पुस्तकों का चुनाव करते समय हमें लिखिए। हम आपकी हर संभव सहायता करने का प्रयत्न करेंगे।

सबको सुनाई दी।

अनीता फिर कुछ समय रश्मि के मुंह की ओर एकटक देखती रही और देखते-देखते उसके होंठों पर एक अत्यन्त सुन्दर मुस्कान आ गई। मुस्कान में भीगे हुए अनीता के होंठ फिर एक बार हिले, "मैं कितनी भाग्यशाली हूं...तुम दोनों मुझे मिल गए। तुम भी और रश्मि भी..."

रामवाली ने डरकर अनीता की बांह हिलाई और रश्मि की ओर हाथ का संकेत करके पूछा, "यह कौन है अनीता ?"

अनीता ने एक विचित्र दृष्टि से वाली की ओर देखा और जैसे कह रही हो, 'तुम्हें मेरे सौभाग्य पर विश्वास क्यों नहीं आता ?'

वाली ने फिर अनीता की बांह हिलाई और रश्मि की ओर संकेत करके पूछा, "इसे पहचानती हो अनीता ? यह कौन है ?"

"पहचानती क्यों नहीं...यह सागर..."

अनीता के सारे माथे पर मृत्यु का पसीना आ गया। पसीने के गोल-गोल बिन्दु गोल-गोल अक्षरों की तरह थे। अगर इस दुनिया को इन अक्षरों की पहचान होती तो वह पढ़ सकती थी कि अनीता के माथे पर मृत्यु के पसीने ने लिखा हुआ था—'जब तक किसी उस औरत को, जिसे सच्चाई की तलाश है, उसका बच्चा और उसका महबूब, दोनों चीज़ें नहीं मिल जातीं, उसका हशर हमेशा अनीता की तरह होगा।'

○ ○ ○

आशा है, यह उपन्यास आपको रुचिकर लगा होगा। इसके बारे में हम आपके बहुमूल्य विचारों का स्वागत करेंगे। राजपाल एण्ड सन्ज़ का सदैव यह प्रयास रहा है कि उत्कृष्ट प्रकाशनों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया जाए; और यह सब आपके हार्दिक सहयोग पर ही निर्भर है। यदि आप कथा-साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हैं तो हमारा उत्कृष्ट उपन्यास-साहित्य मंगवाकर पढ़िए अथवा पुस्तकों का चुनाव करते समय हमें लिखिए। हम आपकी हर संभव सहायता करने का प्रयास करेंगे।